तृतीय अध्याय

सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण में वर्णित धर्म का स्वरूप

भारत जिसे कहते हैं, वो किन्हीं भौगोलिक सीमा रेखाओं, किसी भूखण्ड विशेष और किन्हीं पर्वतों नदियों तथा वनांचलों का नाम नहीं है, बल्कि वो एक विशिष्ट आध्यात्मिक संस्कृति का भी है। भारत, दो शब्दों भा+रत से मिलकर बना है। 'भा' का अर्थ है– आभा (प्रकाश) और 'रत' का अर्थ है– संलग्नक अर्थात् जो देश 'प्रकाश', 'ज्ञान' और 'आनन्द' की साधना में संलग्न रहा है, उसी का नाम है 'भारत'। इसीलिए तो बहुत पहले यहाँ उद्घोष हुआ– ''असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय'' अर्थात् असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर जिस धरा खण्ड ने चिरकाल से यात्रा करने की साधना की उसी का नाम 'भारतवर्ष' है। ये तीनों तत्त्व ही 'धर्म' है और जो भी व्यक्ति इस धर्म की साधना करता है, वह किसी भी देश का निवासी क्यों न हो, उसे 'भारतीय' ही कहा जाना चाहिए। सत्य, प्रकाश (ज्ञान), आनन्द, अमरत्व की इस महायात्रा में जो चार पड़ाव पड़ते हैं, उन्हें हमारे ऋषियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों के रूप में व्याख्यायित किया है। इन चार पुरुषार्थों के माध्यम से हमारे ऋषियों ने आध्यात्मिक और भौतिक जीवन में जो संतुलन और सामंजस्य स्थापित किया है, वह अत्यंत दुर्लभ है। यहाँ अर्थ और काम भौतिक जीवन के पुरुषार्थ हैं तथा धर्म और मोक्ष आध्यात्मिक जीवन के लक्ष्य पुरुषार्थ। चारों पुरुषार्थों में 'धर्म' को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है और उसके द्वारा अर्थ, काम और मोक्ष तीनों को ही धर्माक्षित करने की ओर संकेत है।

धर्म का अर्थ है– ''धारयति इति धर्मः''–जो व्यक्ति, समाज और समस्त अस्तित्त्व को धारण करता है, उसी का नाम धर्म है।

ज्ञान और भक्ति (धर्म) के समन्वय से ही भारतीय जीवन का आरम्भ हुआ है। हमारे यहाँ धर्म को अध्यात्म पर और अध्यात्म को धर्म पर अधिष्ठित करके देखा गया। ज्ञान, भक्ति और कर्म, इन तीनों में भक्ति, अर्थात् धर्म के लिए मनुष्य का अधिक आकर्षण होता है।

कवि रूद्र प्रताप ने सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण में धर्म के दो अंग भक्ति एवं ज्ञान का निरूपण करने का प्रयास अनेक बार किया है। भक्ति की कोटि का निर्धारण यदि किया जाय तो कवि पर मूलतः वैष्णव धर्म का अनुयायी होने से वैष्णव भक्ति की ही छाप है। वैष्णव मत की स्थापना सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण में करना उसका उद्‌देश्य और लक्ष्य है। यह सब उसके वैष्णव होने के कारण संभव हुआ है। कवि जिस धर्म को स्वयं जीता है और जिस धर्म के परिवेश में रह रहा है उसी का गुणगान और उसी धर्म की स्थापना भी करता है। वैष्णव मत का जितना ज्ञान कवि को है वह उसका उल्लेख सविस्तार अपनी कृति में करता चलता है। कथा–प्रवाह में वैष्णव मत थोपी गयी विचार–अभिव्यक्ति मात्र नहीं है। कवि इस मत का संयोजन यथास्थान और यथासमय पर करता है।

वैष्णव मत के प्रतिपादन के लिए कवि के पास एक ठोस आधार भी है–वह है राम–कथा। चूँकि कवि राम–कथा का गुणगान करने में स्वयं प्रवृत्त है और उसके राम वैष्णव धर्म के पूज्य स्वामी हैं इसलिए उसे धर्म–प्रतिपादन में काफी सुविधा सुलभ हो जाती है। कथा–विन्यास कवि इतनी पटुता के साथ करता है कि उसका वैष्णव मत और उनका स्वरूप एक सार्थक आयाम प्राप्त कर लेता है।

कवि वैष्णव परम्परा में प्रचलित भगवान विष्णु के दस एवं चौबीस अवतारों में आस्था रखता है–

jke vuU; u xHkxr yhyk Hkku lekuA
v;xfxu bfe fujf[k i: lR; ru; nl tkuAA[1]

सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड में धर्म के अनेक दृष्टान्त दिये गये हैं। धर्म अत्याज्य है। पुरुषार्थों में यह प्रथम है। धर्मविहीन कर्म की निन्दा की गयी है। सेवक–सेव्य भाव को भी महत्व दिया गया है। राम–सेव्य और संसार सेवक है। सत्य पथ पर चलना सबसे बड़ा क्षत्रिय–धर्म होता है–

rkrckr ikyu tl ikomA ifu pjukEc t lou vkomAA
vkiulfjl /ke ifgpkuhA ukg fcc/k rft vij u tkuhAA[2]

अन्त में पिता वचन को मानने में ही सबको आनन्द मिलता है।

राम ने आर्य धर्म, कुल धर्म और युग धर्म का पालन किया है। साधु लोग उनको सबसे अधिक विशिष्ट कहते हैं, विष्णु का अवतार बताते हैं–

lrxu dfj /kfj fcLu lJhjkA ikyu djr fcLo j?kchjkAA[3]

वाल्मीकि रामायण में जिस वैष्णव धर्म का प्रतिपादन हुआ है, उसकी पुष्टि निम्नवत् है–

/keks fg ijek ykd /ke lR; ifrf"BreA
/ke lfJreI;rr firopukeRreeAA[4]

'संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। धर्म में सत्य की प्रतिष्ठा है। पिताजी का वचन भी धर्म के आश्रित होने के कारण परम उत्तम है।

lJR; p firokD; ekrok ckã.kL; okA
u dr0; oFkk ohj /keekfJR; fr"BrkAA[1]

1 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 54, पृ0 15
2 रामखण्ड, अयोध्याकाण्ड, दोहा 149/7–8, पृ0 80
3 रामखण्ड, अयोध्याकाण्ड, दो0 184/8, पृ0 99
4 वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, इक्कीसवाँ सर्ग, श्लोक 41 पृ0 249

वीर! धर्म का आश्रय लेकर रहने वाले पुरुष को पिता, माता, अथवा ब्राह्मण के वचनों का पालन करने की प्रतिज्ञा करके उसे मिथ्या नहीं करना चाहिए।

अतः यदि कवि रूद्र प्रताप ने भी आर्य धर्म, कुल धर्म, युग धर्म की बात कही जो कि वैष्णव–परम्परा सम्मत है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धारणात्मक इस धर्मतत्त्व के स्वरूप का साधु निरूपण सुसिद्धान्तोत्तम–रामखण्ड रामायण में किया गया है। धर्म सर्वथा रक्षणीय है और रक्षित होने पर यह धर्म स्वयं रक्षक बनकर सबकी रक्षा करता है। ^/kekZ j{kfr jf{kr* इसी धर्म के रक्षणार्थ परम तत्त्व ब्रह्मा का अवतरण होता है। अधर्म द्वारा धर्म के अभिभूत हो जाने पर इसकी पुनः प्रतिष्ठा हेतु सर्वव्यापक निर्गुण निराकार ब्रह्म को शरीर धारण करके इसी भूतल पर अवतरित होना पड़ता है। रावण–कुम्भकर्ण–मेघनाद इत्यादि दुर्मद राक्षसों से सभी लोकों को समाक्रान्त कर देने पर देवताओं की प्रार्थना पर रघुकुल में परब्रह्म ही श्रीराम के रूप में अपनी मायाशक्ति तथा अंशों सहित मानवी शरीर धारण करके अवतरित होते हैं। इस तरह धर्म की संस्थापना हेतु रामावतार की दिव्य कथा इस रामखण्ड–रामायण में प्रस्तुत है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस वैष्णव धर्म का प्रतिपादन 'सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण' में हुआ है वह तर्कसम्मत है।

(क) पौराणिक और अवतार कथाएँ

कवि रूद्र प्रताप ने पौराणिक आख्यानों तथा पूर्व रामकथाओं को आदर के साथ प्रस्तुत किया है। उन्होंने परम्पराओं का अधिक ध्यान दिया हैं। बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही उन्होंने कह दिया है कि वाल्मीकि तथा अन्य पुराणों के अनुसार मैं कथा कह रहा हूँ। वाल्मीकि के साथ उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास और अध्यात्म

---

1 वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, इक्कीसवाँ सर्ग, श्लोक 42, पृ0 249

रामायण का भी ध्यान रखा है। वंशों के वर्णन में कवि ने 'हरिवंश पुराण' को विशेष महत्व दिया है। भक्ति के प्रसंगों के लिए 'श्रीमद्भागवत्' को स्मरण किया गया है। 'शिवपुराण' की कल्पभेद की कथा रामखण्ड रामायण में भी है। इनके साथ महाभारत, भूगोल तथा इतिहास के ग्रन्थों को भी समादृत किया गया है। इस प्रकार यह रामखण्ड महाकाव्य पुराणेतिहास भी हो गया है–

दक्ष को कन्या उत्पन्न हुई, अत्रि मुनि का आगमन हुआ। दक्षसुता का नाम अनसुइया हुआ। वह महती पतिव्रता हुई। भगवान के अंश चन्द्रमा और चन्द्रमा के पुत्र बुध हुए। बुध के पुत्र पुरुरवा प्रसिद्ध राजा हुए। पतिव्रत धर्मपालन रामवंश की प्रमुख विशेषता है, उसका एक लम्बा इतिहास है। तपस्वी भी इस वंश के राजाओं को देखकर लज्जित हो जाते हैं। राजा रूद्रप्रताप जनकवंशी (चन्द्रवंशी) हैं– जहाँ की कुमारियाँ पतिव्रता होती हैं। कवि ने सबकी वंदना की है। इस प्रकार यह कथा सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं की कथा बन गयी है। अन्य वंश भी यथा प्रसंग वर्णित हैं। राजाओं के साथ ऋषियों की स्वस्थ परम्परा का भी वर्णन है। ऋषि, मुनि, देवता, असुर, तथा अन्य प्राणी और सज्जन–अज्जन की पद वन्दना है।

इस कथा का आदि स्रोत शिव–पार्वती संवाद शिव जी कहते हैं–

tk dj cjuu djr gj ldp lkjnk lslA
fdfe vkoS y?kq HkkM ekq fiz; egklfjrslAA
tk rq ldp egsl dgq djr jke C;k[;kuA
:nzizrki u dgr cuq yhyki#[k iqjkuAA
dgkq rnfifutefr fcfgr lkzru dh #fp ikbA
ukuk xzUFku ds lqer jke[k.M ekq xkbAA[1]

उसी लीलापुरुष को कथा कवि ने प्रस्तुत की है। भारतीय वाङ्मय में फैली हुई रामकथा को कवि ने समेटने का सफल प्रयास किया है। कवि ने द्विभुज

1 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 55, 56, 57, पृ0 16

नारायण (राम) का वैभवशाली वर्णन किया है। कथा क्रम इस प्रकार है– ब्रह्मा शंकर–पार्वती। यहाँ शंकर से कही हुई पार्वती के लिए रामकथा है। एक बार मार्कण्डेय आदि ऋषि मुनि गुण गान करते हुए विरंचि के पास गये–

dfj iuke ljfjf[k gj[kkb xfgdj cgfcf/k fcu; lukbAA
ukFk ikIr dfy tx tc gkbA njkpkj jr uj lc dkbAA
lR; ijk³e[k iU; fcghukA bfedfy tx uj gkfg eyhukAA
r dfg Hkkfr ije in ikofgA fdfe lHkykd ukfj uj tkofgA[1]

हे प्रभु संक्षेप में उपाय कहिए। इस पर ब्रह्मा ने कहा–आपका प्रश्न लोकमंगल के लिए है– इससे मेरा मन अति प्रसन्न है। सबके उत्तर में वे कहते हैं–

jkerÙo ljcLo fu/kkukA fcX; rX; ,d gj HkxokukAA[2]

शिव जी सभी प्रसंगों और संवादों को गिरिजा से कहते हैं। मार्कण्डेय पुराण के भी अनेक प्रसंग हैं। मूलकथा में अनेक प्रासंगिक कथाएँ भी जुड़ी हैं। मार्कण्डेय पुराण के भी अनेक प्रसंग हैं। राम की शोभा का वर्णन बार–बार है। प्रासंगिक कथाएँ वर्णन और चित्रण कुछ अधिक हो गए हैं। प्राचीन असुरों की भी कथाएं हैं– जिनके नाश के लिए रामावतार हुआ था। मधुकैटम्भबंध, देवासुर संग्राम आदि के अतिरिक्त वर्णन है। इनसे कथा के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया गया है। विविध अवतारों की कथा है। राम ही यथा अवसर विविध रूपों को धारण करते रहे हैं। हिरण्यकश्यप की भी कथा है। उसका पुत्र प्रहलाद हुआ। वह रामभक्त था। उसकी रक्षा के लिए राम ने नृसिंहावतार लिया था। परशुराम रूप से उन्होंने असुर रूपी महिपालों को मारा था। रामरूप से उनहोंने रावण तथा

---

1 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 86, चौ0 1–4, पृ0 27

2 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 86, चौ0 7, पृ0 27

अन्य राक्षसों का संहार किया। राम–रावण युद्ध 87 दिनों तक चलता रहा। राम ने 1100 वर्ष तक राज्य किया। रामकथा के साथ–साथ कृष्ण–कथा के भी प्रसंग आ गये हैं। क्षीरशायी विष्णु ही राम हुए हैं। दूसरी मानवी परम्परा से वे इक्ष्वाकुवंशी हैं। अतः वे दोनों हैं। कवि ने ब्रह्म रूप पर अधिक बल दिया है। कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णु पुराण, रुद्रयामल, भैरवतंत्र, वैद्यकग्रन्थ, ज्योतिष ग्रन्थ, भागवत्, मारकण्डेय पुराण, हरिवंश पुराण और महाभारत के प्रसंग अधिक दिये गये हैं। अवतारों की विविध कथाएँ विस्तार से हैं। उनसे सम्बन्धित राजाओं, देवों और असुरों की कथाएँ हैं। सब में मुख्य कथा ब्रह्ममय राम की है– जिसकी एक स्वस्थ परम्परा है। मुख्य कथा शिव–पार्वती संवाद की है–

tfg jkefg tkxhxu lnk lkb fuR; uUn fpnkReuhA
br jke in tfg ukl ufg] rfg ije cã lfrg HkuhAA[1]

गोस्वामी तुलसीदास ब्रह्म के दो स्वरूप मानते हुए भी स्वीकार करते हैं कि भक्तों के हित के लिए भगवान राम ने नर तन धारण किया–

vxu lxu nb cã l:ikA vdFk vxk/k vukfn vuikAA[2]

और jke Hkxr fgr uj ru /kkjhA lfg ldV fd, lk/k l[kkjhAA[3]

कवि रूद्र प्रताप भगवान विष्णु के अवतारों में आस्था रखते हैं। वह कहते हैं–

jke vuU; u xHkxr yhyk Hkku lekuA
v;xfuu bfe fujf[k i: lR; ru; nl tkuAA[4]

कवि के इष्ट अवतारी हैं। भगवान विष्णु के नर रूप में अवतीर्ण होने की

---

1 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, छंद 94, पृ0 264
2 रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, बालकाण्ड दो0 23, चौ0 1
3 रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, बालकाण्ड, दो0 24, चौ0 1
4 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 54, पृ0 15

कथा मात्र वैष्णव धर्म की बात हो ऐसा नहीं क्योंकि वाल्मीकि स्वयं भगवान विष्णु के नर अवतार के बारे में प्रमाण प्रस्तुत कर इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। देवताओं की प्रार्थना सुनकर नारायण कहते हैं कि राक्षस–राज रावण के वध के लिए कौन सा उपाय है? देवताओं का उत्तर है– प्रभो! आप मनुष्य का रूप धारण करके युद्ध में रावण को मार डालिए–

mik;% dk o/k rL; jk{klkf/kir% l|jk%A
;eg| r| lekLFkk; fugU;kef"kd.Vde·AA
,oeDrk% l|jk% lo| iR;pfo".k|e0;;eA
eku|"k| :iekLFkk; jko.k tfg l|;|xAA[1]

रामखण्ड के किष्किंधापथ में कवि बुद्ध चरित्र का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि बुद्ध विष्णु के नवें अवतार हैं। इस तथ्य को प्रामाणिक बनाने के लिए वह स्वयं बुद्ध के मुख से साक्ष्य प्रस्तुत कराने का प्रयास करते हैं– बुद्ध जन्म लेते ही अपने माता–पिता से कहते हैं कि मैं विष्णु का नौंवा अवतार हूँ–

tUer tuuh tud l|uk,A gm| gfj uoe· :i njlk,AA
r| fcfLer y?k| ckyd ckykA djc fxjk i|Hk| vki vMkykAA[2]

कवि वैष्णव परम्परानुसार भगवान के दशावतार एवं चौबीस अवतारों की मान्यता को स्वीकार करते हैं। भागवत–धर्म के अनुसार प्रभु अवतारी हैं। कवि धर्म का वर्णन भागवत–धर्म के अनुसार ही करता है। कवि अपने वैष्णव मत के प्रतिपादन और प्रमाण के लिए राम के अवतारों को यथास्थान निर्देशित करते हैं। इसी क्रम में वह हिरण्यकश्यप एवं भक्त प्रहलाद के कथा–प्रसंग में राम की भक्तों पर कृपा का गुणगान करते हैं। पौराणिक तथ्य तो यह है कि भगवान विष्णु नरसिंह रूप में प्रकट होकर प्रहलाद की रक्षा करते हैं लेकिन कवि यहाँ

1 वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग 16, श्लोक 2,3
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधापथ उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2392, चौ0 1–2, पृ0 1092

राम की ही पुकार की बात लिखते हैं।

वैष्णव मत के अनुसार राम और विष्णु एक–दूसरे के पर्याय ही हैं। वह लिखते हैं–

lfu; vij dN dFkk ilxkA c<b Hkxfr tfg dfyey HkxkAA
uke fgjU;dfli [ky tkbA Hkkrk dudu;u dj gkbAA[1]

भक्त प्रहलाद प्रभु में आस्था रखते हैं और प्रहलाद को सारा जगत जानता है। कवि लिखते हैं कि–

rkl ru; Hkkxor i/kkukA Hk; iYgkn txr tfg tkukAA
gfj lfeju dj lk fnujkrhA jVr fujrj xuxu ikrhAA
jke jke jkefr idkjhA lnj ikr fl/k llkjhAA[2]

कवि देवीभागवत् और श्रीमद्भागवत् के आधार पर विष्णु के अवतारों का सम्यक् विवेचन करते हैं। इसी क्रम में वह आद्या शक्ति द्वारा मधु और कैटभ नामक राक्षसों के संहार का भी वर्णन करते हैं। तदनन्तर कवि राम के मत्स्यावतार रूप की चर्चा करते हैं। कदाचित् वह नारायण के अनेक अवतारों का वर्णन करके यह दर्शाना चाहते हैं कि वह वैष्णव धर्म के जिम्मेदार संवाहक है।

यह निश्चित है कि अवतार कथाओं के माध्यम से उन्होंने अपना वैष्णव धर्म–चिन्तन बड़े विश्वास के साथ प्रस्तुत किया गया है।

¼ख½ *निर्गुण तथा सगुण विचार*

विश्व की परमसत्ता ब्रह्म शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। वह निर्गुण–निराकार है तथा सर्वव्यापक है। वह सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है। परम सूक्ष्म चैतन्य सत्ता तत्त्वतः निर्गुण होकर भी दृश्यमान स्थूल जगत् के रूप में सगुण–साकार

---

1 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, सो0 99, चौ0 7–8, पृ0 34
2 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 100, चौ0 7–9, पृ0 35

है। वास्तव में स्थूल पदार्थ का आधार सूक्ष्म तत्त्व होता है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सत् एवं नित्य विश्वात्मा जगत् एवं प्राणियों के रूप में सगुण साकार है।

तुलसी की दृष्टि में एक ही ब्रह्म निर्गुण–निराकार है तथा सगुण–साकार भी है–

vxu lxu nb cã l:ikA vdFk vxk/k vukfn vuikAA[1]

निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्म हो जाता है।

fuxu cã lxu oi/kkjhA[2]

पार्वती ने शिव से संशय किया था कि निर्गुण ब्रह्म सगुण कैसे हो गया? शिव ने कहा, जिन्हें निर्गुण और सगुण का विवेक नहीं है, वे अनावश्यक विवाद करते हैं–

ftUg d: vxu u lxu fcdkA tYifg dfYir cpu vudkAA[3]

शिव पार्वती को समझाते हैं कि वास्तव में अगुण–सगुण में भेद नहीं है–

lxufg vxufg ufg dN HknkA xkofg efu ijku c/k cnkAA
vxu v:i vy[k vt tkbA Hkxr ie cl lxu lk gkbAA
tk xu jfgr lxu lkb dlA ty fge miy fcyx ufg tlsAA[4]

एक ही जल निराकार है तथा वही वाष्पीकरण प्रक्रिया द्वारा वाष्प के रूप में सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म हो जाता है। वही पुनः रूपान्तरित होकर हिम (बर्फ) के रूप में

---

1 रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो0 23, चौ0 1, पृ0 27, गीताप्रेस गोरखपुर, द्वितीय संस्करण।
2 रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो0 110, चौ0 4, पृ0 100
3 रामचरितमानस, बालकाण्ड, सो0 115, चौ0 5, पृ0 104
4 रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो0 116, चौ0 1–3, पृ0 105

सगुण–साकार भी हो जाता है। यह परमात्मा की लीला है।

ज्ञानियों के लिए जो ज्ञानगम्य है, भक्तों के लिए वही भावगम्य भी है।

सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण में कवि ने धर्म के दो अंग भक्ति एवं ज्ञान का निरूपण करने का प्रयास किया है। भक्ति की कोटि का निर्धारण यदि किया जाय तो कवि पर मूलतः वैष्णव धर्म का अनुयायी होने से वैष्णव भक्ति की ही छाप है।

वैष्णव मत के प्रतिपादन के लिए कवि राम–कथा का गुणगान करने में स्वयं प्रवृत्त है और उसके रकाम वैष्णव धर्म के पूज्य स्वामी हैं।

उसके इष्ट अवतारी है। कवि स्वीकार करता है–

fnxHkt gjh gfg vkfn ufg vorkj vorkjh euhA
yhyk djr Hkxoku tfg r NkHk yg tx y?k /kuhAA
rfg i#[k dj cogkj cjuu vr xFk dgk lghA
lkb vxe vLkr ifu vxkpj tkr ufg fufur dghAA[1]

तुलसीदास जी ब्रह्म के दो स्वरूप मानते हुए भी स्वीकार करते हैं कि भक्तों के हित के लिए भगवान राम ने नर तन धारण किया–

jke Hkxr fgr uj ru /kjhA lfg ldV fd, lk/k l[kkjhAA[2]

अतः यदि कवि रूद्र प्रताप ने भी रामावतार की बात कही जो कि वैष्णव परम्परा सम्मत है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

कवि भागवत–धर्म के अनुसार ही 'वंशपथ' के द्वितीय विश्राम में वैष्णव धर्म का प्रतिपादन करता है। कवि के शब्दों में–

---

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड, वंशपथ, विश्राम 1, छंद 3, पृ0 15–16
2 रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो0 24, चौ0 1, पृ0 28

pØfcr uØm e[k nkjhA cØ xkg r; yhUg mckjhAA
Hktu irki [;kr tx ekghA rfg vn/ok lfj nlfj ukghAA
lj y ekx lkgc lfp ikbA fc?ku u gkfg jPN j?kjkbAA
rfg Hkkxor ekx lfp tkuhA tfg e lrr ekn u gkuhAA
lod ge lkgc j?kjkbA ;g fcpkfj dfj pg tg tkbAA
rk r ldy ekne; dkjhA cnk mek lfgr f=ijkjhAA
tkb gfj pfjr C;Dr ;g dhUgkA ekn ldy eÙ;u dg nhUgkAA[1]

भगवान विष्णु के नर रूप में अवतीर्ण होने की कथा मात्र वैष्णव धर्म की बात हो ऐसा नहीं क्योंकि वाल्मीकि स्वयं नारायण के नर अवतार के बारे में प्रमाण प्रस्तुत कर इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। देवताओं की प्रार्थना सुनकर नारायण कहते हैं कि राक्षस राज रावण के वध के लिए कौन सा उपाय है? देवताओं का उत्तर है– भगवन्। आप मनुष्य रूप धारण करके रावण का वध कर डालिए–

mik;% dk o/k rL; jk{klkf/kir% ljk%A
;eg r lekLFkk; fugU;kef"Vd.VdeAA
,oeDrk% ljk% lo iR;pfo".ke0;;eA
ekuq"k :iekLFkk; jko.k tfg l;xAA[2]

प्रायः निर्गुण रूप समझने में सरल प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में गुणों से परे दिव्य, सगुण रूप और अगम चरित्रों को सुनकर मुनियों को भी भ्रम हो जाता है। निर्गुणता का अर्थ बंधनमुक्तता है। बिना गुणातीत हुए जीव प्रकृतेतर नहीं हो सकता और बिना प्रकृतेतर हुए ब्रह्म या तत्त्व ज्ञान की अनुभूति नहीं होती है।

सगुणोपासना का अर्थ है मूर्त उपासना। निर्गुणोपासना का अर्थ है ब्रह्म तत्त्व की उपासना, जो कि अमूर्त है, इसे ही क्रमशः साकार और निराकार की

1 रामखण्ड रामायण : वंशपथ, छंद 4, चौ0 2–8, पृ0 19–20
2 वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड सर्ग 16, श्लोक 2–3

उपासना कहते हैं। वास्तव में सगुण रूप तथा निर्गुण रूप पृथक–पृथक प्रतीत होते हुए भी एक ही हैं। राम ब्रह्म है और ब्रह्म राम हैं जो निराकार रूप में सच्चिदानन्द ब्रह्म है, वही साकार रूप में सत्य, प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति राम हैं।

कवि राजा रूद्र प्रताप सिंह ने इसे ही निरूपित, प्रतिपादित एवं प्रतिष्ठित किया है।

(ग) ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष का स्वरूप

ब्रह्म

उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म सत् है। वह सर्वव्यापी, नित्य, अनन्त और शुद्ध चैतन्य है वही सबकी आत्मा है।[1] आत्मा या परमात्मा की तात्विक समझदारी तत्वानुभूति या ब्रह्मानुभूति है। उसी से इस जगत की उत्पत्ति हुई है, उसी से यह स्थिर है और उसी में विलय हो जाता है। यह प्रकृति और ये प्राकृतिक शक्तियाँ उसी का अंश है। वह सत्य और अनन्त है। कालातीत, गुणातीत, अभेद, अनाम, अरूप सत्य, प्रकाश और आनन्द आदि अनुभूतियों के द्वारा ब्रह्म की अवधारणा समझी जा सकती है।

गीता में कहा गया है– ^ufg Kkuu ln'k ifo= bg fo|rA*

ब्रह्म का स्वरूप विज्ञानमय और आनन्दमय हैं उसको विवेक के द्वारा जाना जा सकता है। वह मन, बुद्धि, इन्द्रिय से परे है। वह अन्तस्थ, कूटस्थ, नित्य और विभु है। यह विश्व ब्रह्म ही है। सब कुछ आत्मा ही है। सब प्राणियों के भीतर वही छिपा है। वह ब्रह्म तू ही है। भगवद्गीता के कृष्ण और मानस के राम दोनों ब्रह्म हैं। कवि रूद्र प्रताप सिंह की दृष्टि मर्यादावादी हैं रचना के अनेक प्रसंगों में कवि के तात्विक विचार है। कवि ने अद्वैतवाद को स्वीकार किया है। उसका प्रयास है कि राम ही अद्वैत स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के रूप में स्थापित हों। राम

---

1 भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, पृ0 41, संस्करण 1983

के ब्रह्म रूप की बात अनेक स्थानों पर कही गयी हैं। राम, अद्वैत, परब्रह्म परमात्मा है–

> jQk:<kx< vfr e<&nM&nkrkjA
> }rghu v}r lk dhUgm }r fcpkjAA
> ,l iHk j?kcl&efu cn u ikor ikjA
> rk dk tl cjuu pgk fu te/kk vulkjAA
> dfj dN rÙo c[kku X;kuoku tfg X;ku HkfuA
> cjum HkfDr ijku dfy vk/kkj fojfp&drAA
> dje&xkFk dN xkb vej firj dkfyd ldyA
> ifu Hkxky cukb xxu&xky fcLrj lfgrAA
> fcf/k gj eu d Hkkx l;l lke dy HkicjA
> le>fg tfg fcf/k ykx jkek;u&xkFkk l[knAA
> ckYehfd&er vkfu vijijkuu d lerA
> fcjpm vkun&[kkfu jru ee{kUg vkejuAA
> [kktfg tk uj vkb vkfn vr ;fg xFk dkA
> lk lc nyHk ikb tk vud lkL=u y[kAA[1]

राम परब्रह्म स्वरूप हैं– जो बाहर–भीतर वास करते हैं। प्रकृति उनकी चेरी है। वे संसार में भटकते हैं। अर्थात् संसारी के समान ही रहते हैं। ब्रह्म के साथ उनका पुरुषोत्तम रूप भी है। वे सबके जन्मदाता हैं, उन्हीं का कवि वर्णन करता है। कवि ने ब्रह्म को त्रिगुणात्मक भी माना है, जो राम हैं–

> frfevk|fg dN dkjt ukghA cã lHkko ixV rfg ekghA
> xucl v# ikjC/k fudk;kA f=x.kkRed xu fcjpfl ek;kA
> ,lk jke:i mj vkuhA Hkktu l#fp l)k vf/kdkuhA
> cã lf"V Lok;Hk tkbA lr:ik iRuh rfg gkbAA

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड, बालकाण्ड, रूद्र प्रताप सिंह, दोहा 16–17, सो0 18–22, पृ0 2, 3

n{k i:tkifr efg fc[;krkA rfg cfjuh ukfj Hko ekrkAA[1]

कवि राम के श्रेय को ही स्वीकार कर अपनी कथा को प्रस्तुत करता है। इसी से राम नाम के जय की महिमा बार–बार गायी गयी है। कवि का झुकाव ब्रह्म राम पर अधिक है। सबका मूल राम को माना है। राम ही परम शक्ति और अन्तिम आश्रय हैं। उनको प्राप्त करना ही जीव का मूल हेतु है। राम का व्यक्तित्त्व उद्धारक व्यक्तित्त्व है। उनका अवतार ही लोकमंगल के लिए हुआ है।

जीव

जीव का अस्तित्त्व पिण्डधारियों में होता है। 'सूक्ष्म और कारण शरीर' के माध्यम से जीव का प्रकाशन होता है। प्राण और जीव या जीवन समान धर्मा है।

उपनिषदों में जीव को वैयक्तिक आत्मा और आत्मा को परम आत्मा कहा गया है और बताया गया है कि दोनों क्रमशः अंधकार तथा प्रकाश की भाँति एक ही गुफा में निवास करते हैं। जीव अनुभूतियुक्त और कर्मफलों के बंधनों से जकड़ा हुआ है, किन्तु आत्मा अज, अनादि और नित्य है तथा कर्मबंधों से विमुक्त है।[2]

आत्मा के प्रकाश से हमारा अंतःकरण प्रकाशित होता है और अंतःकरण के प्रकाश से हमारा पिण्ड (शरीर) सजीव दिखता है। आत्मा जब अपना प्रकाश खींच लेता है तो स्थूल शरीर निष्प्राण हो जाता है क्योंकि स्थूल शरीर को अन्तःकरण का प्रकाश नहीं प्राप्त हो पाता है। ''जीव को ही आत्मा कहा गया है और वेदान्त दर्शन में वह जीव भाव की उपादानभूत अविद्या है। अविद्या की निवृत्ति हो जाने पर उसको ब्रह्मरूप माना गया है।''[3]

कवि रामखण्ड रामायण में जीव–ब्रह्म की चर्चा यों ही नहीं करता है।

---

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड, बालकाण्ड, रूद्र प्रताप सिंह, दो0 29, चौ0 1–5, पृ0 4
2 भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, पृ0 43
3 भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, पृ0 44

रामखण्ड रामायण में कवि सर्वत्र अपने ज्ञान का उपयोग करता है, विशेषकर जहाँ वह अध्यात्म की बातें करने लगता है उसका विचार और चिन्तन बहुत उत्कृष्ट रूप प्राप्त कर लेता है–

Hkfer ldy fll y[kfg ftfe Hker lnu r: xkeA
rFkk vfc|k Hkfer tu tho fHkUurj jkeAA
tho cã dg ,d djkghA lod lC; Hkko tfg ukghAA
Hkefg pUn le e?kk/khukA y[kfg leLr tho /kh&ghukAA
,lu Kku vfc|k lkbA feVfg u rkfg fdefi Hke dkbAA
bl nkl le rj eu HkkÅA x;kuklu ;g ek;k vkÅAA
ge lc en df/k[k.k yhukA /kU; /kjkry Hkxfr ichukAA
lod lC;Hkko eu tghA vorkjh vorkj lnghAA
fujey cf) }rij tkdA ekg u ek;k ckf/kr rkdAA
ek;k Hkxfr mHk; iHk ukjhA dyg&jfgr nkm lfjl nykjhAA

tk[kk tk[kk :i ij ekgu lkgu dkfjA
X;ku dje dg ekg d: lrr jhfr fugkfjAA[1]

इस प्रकार कवि जीव एवं ब्रह्म की एकता का अद्भुत निदर्शन प्रस्तुत करता है। ईश्वर की कृपा के अभाव में अज्ञानान्धकार का नाश नहीं होता। अद्वैतवादी साधक माया से मोहित नहीं होता। माया और भक्ति दोनों प्रभु की पत्नियाँ हैं। माया में फँसकर जीव अपना विनाश करता है और भक्ति का आश्रय ग्रहण करके जीवन को धन्य करता है। निर्मल–बुद्धिसम्पन्न साधक माया में लीन नहीं होता।

जगत

उपनिषदों में जगत् को ब्रह्म का ही दूसरा रूप माना गया है। ब्रह्म ही

---

1 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 110–111, चौ0 1–8, पृ0 40

उसका पिता है, वही पालक है और वही संहारकर्ता। ब्रह्म अनन्त है और जगत् उसका एक अंश है। कवि राम के श्रेय को ही स्वीकार कर ही इस ग्रन्थ की रचना करता है। राम के व्यापक स्वरूप को ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या की भावना है–

jke v[kM vu?k HkxokukA fpr jfgr vfpr fujckukAA
tkl vfc|k dj fcdkjkA ixV gkr g ;g llkjkAA
ty d ufg dkNk dN ehukA xucl ixVfg fuR; uchukAA
rlfg cã lR; fu%dkekA jpr vfc|k feF;k /kkekAA
vorkjh vorkj tgk ykA ldy flf"V dj lx rgk ykAA
feF;k Lolu lfjl njlkbA Hk; ikr rfg lkp u ikbAA[1]

जैसे प्रभात होने पर अंधकार मिट जाता है, वैसे ही ज्ञान होने पर अज्ञान रूपी अंधकार और भ्रम समाप्त हो जाता है। मोह, दंभ और क्रोध भी मिट जाते हैं। यह संसार माया का विकार है– जो इन्द्रजाल–सा लगता है। जब तक वास्तविक ज्ञान नहीं हो जाता तब तक माया का प्रभुत्व बना रहता है।

यह जगत सत्व, रज, तम, इस त्रिगुणी माया का भाव है। कारणरूप पर ब्रह्म का एक अंश है। सृष्टि, स्थिति और लय, जगत् की यह स्थिति सनातन है, क्योंकि वह (जगत्) ब्रह्म की ही अपरावस्था है।

वेदान्त की दृष्टि से जगत् की कोई सत्ता नहीं है, ब्रह्म की सत्ता से वह सत्तावान् है। इसलिए जगत् को मिथ्या और ब्रह्म को सत्य कहा गया है–

^cã lR;e txfUeF;k*

वेदान्त के अनुसार इस जगत् का कारण ब्रह्म है।

---

1 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 59, चौ0 1–6, पृ0 16

शंकराचार्य ने कहा है कि ''जिस प्रकार सोने से बना आभूषण निःसन्देह सोना ही होता है उसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न हुआ जगत् निश्चित ही ब्रह्म है–

lo.kkTt;ekuL; lo.kRo fg fuf'preA
cgE.kk tk;ekuL; cãÙo p fofuf'preAA[1]

इस प्रकार कवि के अनुसार ब्रह्म ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण है।

माया

सुसिद्धान्तोत्तम–रामखण्ड में स्थान–स्थान पर परब्रह्म भगवान श्रीराम के स्वरूप का सुस्पष्ट सुन्दर निरूपण किया गया है। वह (राम) प्रकृति से परे अनादि, आनन्दस्वरूप एक तथा पुरुषोत्तम हैं जो अपनी माया शक्ति से इस सकल सृष्टि की सर्जना करके आकाशवत् सभी तरफ से इसको परिव्याप्त कर लेते हैं तथा आत्मरूप में सभी के अन्तःकरण में अवस्थित होकर अपनी ही माया से सकल विश्व का परिचालन कर रहे हैं।

माया से अभिप्राय 'मा' अर्थात् नहीं, 'या' अर्थात् जो। कहने का तात्पर्य है इस जगत में जो जैसा दिखता है वो वैसा नहीं है। यही माया का तात्पर्य है। माया को मन की मिथ्यानुभूति भी कहते हैं। इसीलिए जगत को भी मिथ्या कहा गया है। मिथ्या का तात्पर्य है दिखना कुछ और होना कुछ और। जीव की माया, अविद्या माया होती है। जबकि ईश्वर की माया, विद्या माया होती है। ईश्वर अपनी माया से ही सृष्टि का सृजन करते हैं।

तुलसीदास जी कहते हैं–

vkx jke y[ku cu ikNA rkil c"k fcjkt r dkNAA
mHk; chp fl; lkgfr dlA cã tho fcp ek;k tlAA[1]

---

1 उद्धृत भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, पृ0 390

कवि कहते हैं कि यह संसार माया का विकार है– जो इन्द्रजाल सा लगता है। जब तक वास्तविक ज्ञान नहीं हो जाता तब तक माया का प्रभुत्व बना रहता है। मायावृत्त जीवन अंधा होता है। वह भ्रम में भटकता रहता है। जब तक जीव स्वयं को पहचान नहीं पाता– तब तक वह अविद्या के चक्कर में भ्रमित रहता है। माया के दो रूप निरूपित है– विद्या माया तथा अविद्या माया। विद्या माया से मुक्ति ईश्वर, सुख, आनन्द और शान्ति की प्राप्ति होती है। अविद्या माया से बंधन, नरक, दुःख और अशांति की प्राप्ति होती है। मोह की ग्रन्थि जब तक नहीं छूटती है–तब तक जीव मोह रूपी कारागार से नहीं मुक्त हो पाता है–

ek;kiVy tho Hke HkjhA rk r| fujf[k ijr ufg njhAA
tc yfg tho u fut ifgpkuA rkor Hkfer vfo|k ekuAA
ekg xfFk tc yfx ufg VVfgA uj u ekgdkjkfxg NVfgAA[2]

Hkfer ldy fll| y[kfg ftfe Hker Inu r: xkeA
rFkk vfc|k Hkfer tu tho fHkUurj jkeAA[3]

सभी कष्टों के निवारण के लिए कवि ने सेवक–सेव्य भाव को ग्रहण करना श्रेष्ठ माना है–

tho cã dg ,d djkghA lod l0; Hkko tfg ukghAA[4]

अविद्या माया का वर्णन अधिक है। कवि ने सेवक–सेव्य भाव और द्वैतवाद को भी माना है। इस भाव के आने पर माया–मोह के प्रपंच का विनाश हो जाता है। कवि ने अद्वैत–द्वैतवादों को स्वीकार किया है। राम दोनों हैं–

lod lC;Hkko eu tghA vorkjh vorkj lnghAA

1 रामचरितमानस : अयोध्याकाण्ड, दो0 123, चौ0सं0 1, 2 प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर द्वितीय संस्करण
2 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड, बालकाण्ड, चौ0 6, 7, 8, पृ0 40
3 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड, बालकाण्ड, दो0 110, पृ0 40
4 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 111, चौ0 1, पृ0 40

fujey cf) }r ij tkdA ekg u ek;k ckf/kr rkdAA
ek;k Hkxfr mHk; i:Hk ukjhA dyg&jfgr nkm lfjl nykjhAA[1]

jke uke Hk[kt ije dfyey C;kf/k fclkyA
ngu djr lCnfg lur ftfe ljkL; lMkyAA[2]

कवि कहता है माया प्रबल है। उसके बंधन से प्राणी हरिकृपा से ही छूट सकता है। वह सगुण–निर्गुण दोनो है–

vC;; vf[ky vukfn vdk;kA v}; vufcdkj fuek;kAA[3]

lfPpr vP;r ur tkl vr yg lfrm ufgA
tfg xu xkor lr vkfn e/; volku fcuAA[4]

ujcjdfcxg jekcj ije i#[k HkxokuA
X;kukRek tk i.ko g i#[kkRre tx tkuAA[5]

ixV tx vfHkjke fØikdjA tkl pju lor vt ldjA
L;kecykgddkj ljhjkA /kj ihr iV fc|r /khjkAA[6]

lod lC; Hkko dfj lofg fut fut vlA
vfr fll iu r ihfr dj lb vej vorlAA[7]

gk vfr c) fØ;k;ru lef> vfuR; ljhjA
ldy ilslr jke dg uhfr jhfr xHkhjA[8]

T;"B l"B xut r cgfj djrk clkpkjA
jkj er Hkkob vofl dfj; jke HkvkjAA[1]

---

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 111, चौ0 6, 7, 8 पृ0 40
2 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 113, पृ0 40
3 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, सो0 610,चौ0सं0 9, पृ0 250
4 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, सो0सं0 610, पृ0 251
5 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0सं0 639, पृ0 265
6 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 641, चौ0सं0 7, 8, पृ0 265
7 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0सं0 661, पृ0 273
8 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, अयोध्याकाण्ड, दो0सं0 17, पृ0 9

ikjcã rje fujvoyckA ey ifØfr lhrk txnckAA
Hk;m ixV irx&dy&HkkuA ir tnfi dy ;g HkxokuAA[2]

कवि के माया के प्रभाव को सबने स्वीकार किया है। उसी के प्रभाव से रामकथा में अनेक अन्धे मोड़ आ जाते हैं। माया सबको ठगती है।

मोक्ष का स्वरूप

मोक्ष ही मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है, कोई काल्पनिक नहीं है। यह यथार्थ साध्य है तथा पूर्णतः सिद्ध है। फिर भी इस मोक्ष रूप परम प्रयोजन की सिद्धि के विविध साधनों का निरूपण किया गया है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, श्रीमद्‌भागवत, देवीभागवत् इत्यादि में ज्ञान–कर्म–भक्ति त्रिविध साधनों का निरूपण है जो भिन्न–भिन्न साधकों के लिए विहित है।

'गीता' में मोक्ष के लिए भक्ति, कर्म, उपासना और ज्ञान ये चार साधन बताये गये हैं। ये चार भगवान् के शरणागति के साधन हैं क्योंकि श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है, 'हे अर्जुन, परम श्रद्धा से मुझमें मन को लगाकर जो निरन्तर उपासना करते हैं, वे ही उत्तम साधक हैं।' जो भक्त अपने किये हुए सभी कर्मों को मेरे अर्पण करके एकाग्र मन होकर मेरी उपासना करते हैं, उन अपने भक्तों का मैं इस मृत्युरूपी संसार से शीघ्र ही उद्धार कर देता हूँ।' इसलिए–

e¸;o e; vk/kRLo ef; cf) fuo'k;A
fulfl";fr e¸;o vr Å/o u l'k;%AA

'ओ मेरे भक्त, मन और बुद्धि को स्थिर रूप में मुझमें लगा दे। तब मुझे असंशय अवगत होगा कि तू मुझ आनन्दसिन्धु में ही निवास कर रहा है।[3]

---

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, अयोध्याकाण्ड, दो0सं0 18, पृ0 9
2 रामखण्ड रामायण, अयोध्याकाण्ड, दो0 33, चौ0सं0 7–8, पृ0 18
3 उद्धृत, भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, पृ0 63

मानव जीवन के परम प्रयोजन मोक्ष की प्राप्ति के लिए ऋषि–मनीषियों ने अनेक उपायों को बतलाया है। वास्तव में यह साधन भेद साधक अधिकारियों की दृष्टि से है। सभी मनुष्यों का समान साक्ष्य मोक्ष है, पर मुमुक्षु जीवों में ज्ञान कर्म, क्षमता, शक्ति इत्यादि की समान रूपता नहीं है। इसलिए सर्वहित की कामना से ऋषियों ने अनेक उपायों का विधान कर दिया है।

सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड में मोक्ष की सिद्धि हेतु भक्ति को प्रधानता दी गयी है तथा मोक्ष प्राप्ति में यह भक्ति सर्वथा सुनिश्चित साधन है। सामान्य व्यक्तियों के लिए भक्तियोग श्रेयस्कर है। सर्वस्व समर्पण शरणागतिरूपी भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् (राम) भगवत्परायण उस भक्त को अपुनरावृत्ति रूप मोक्ष प्रदान कर देते हैं, वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

कवि कहते हैं कि भक्ति और मुक्ति (मोक्ष) के कारण श्री रघुनंदन ही हैं–

ek iqtu fu"Bk ek rRijA euu uke ek c) lqifjdjAA
,fg fcf/k ekfgq Hktfg euykbA HkfDr iqlkn iqjk cn ikbAA
HkfDr&eqfDr&dkju j?kqunuA ftfe lkjHk dkju nyq pnuAA[1]

कवि ने वेदान्त का अनुसरण किया है। कर्म, उपासना और ज्ञान बिना भगवत्भक्ति के व्यर्थ हैं। तीर्थाटन का भी कोई महत्व नहीं होता है। ज्ञान और कर्म दोनों से मुक्ति हो जाती है। भगवत्कृपा मोक्ष का सबसे सहज और उत्तम साधन है, जैसे अहिल्या का उद्धार हो गया। राम महिमा का बार–बार वर्णन हैं। ईश्वर का विरोध अक्षम्य अपराध है। राम के विरोध से लंका जलकर राख हो गयी। भजन प्रताप और भक्ति की महिमा बार–बार गायी गयी है। ईश्वर का गुणगान कभी व्यर्थ नहीं जाता है–

1 रामखण्ड रामायण, अरण्य काण्ड, दो0 83, चौ0 1–3, पृ0 41

;g tkfu vey fcey l|iFk dkey l|[kn deyk|iekA
j?k|c|l Hk|[ku c|ã yf[k v# ldfr tkufd ru| jekAA
c|ãkMe; lkb f}Hk|t jk?ko vkfnfl|f"V y[k| ijA
fØLukfn jk?ko eRL; gfj fof/k vkfn bfe yh|yk djAA[1]

जैसे सागर से जल भूमि पर आता है– फिर भूमि से सागर में आता है, वैसे विश्व रघुवर से उत्पन्न होकर उन्हीं में समा जाता है। अतः रामभक्ति महिमा का ही गुणगान करना चाहिए–

t| Hkt fg| jkefg R;kfx dkefg ukeek=fg| logh|A
fn|x cju t|fg eu ykx r|fg i|Hk| /kke mRre nogh|AA
jke dg tk| eu|tcj r| vkl|gh Qy ikoghA
,d uke i|fr cg| lgluke l|iU; e|fuxu xkogh|AA[2]

रामनाम की महिमा और उसके सुन्दर फल को बार–बार कहा गया है। सभी कष्टों के निवारण के लिए कवि ने सेवक–सेव्य भाव को ग्रहण करना श्रेष्ठ माना है– चक्रपाणि विष्णु की भक्ति की प्रमुखता है। इसी रूप का स्मरण करने से जग का पाप नष्ट हो जाता है। चक्रपाणि विष्णु और रघुवर एक हैं। राम नाम के कीर्तन के महत्व को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। उसके प्रबल प्रभाव को भी दिखाया गया है–

pØikfu d| Lej.k dj| rA gkfg| u"V tx ikrd t|rAA
fcLu| euu djrk t| ikuhA gkfg| ?kk|j v?k rk dj gkuhAA
j?k|oj uke jVr tfg n|[khA iki r|[kkj lHkku| fcl|[khAA[3]

केसव नाम भी समान माना गया हैं यदि किसी प्रकार से राम–प्रेम होगा, तो प्रेमी का उद्धार हो जायेगा–

---

1 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, छंद 4, पृ0 20
2 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, छंद 19, पृ0 36
3 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 114, चौ0 1–3, पृ0 41

dlo Hktu ek= r| ikuhA ikodlfjl djr v?kgkuhAA
lcl fccl l|[klr v: tkxA dofug| Hkkfr jke vukjkxA
Hkt| LoPNfcf/k jfgr njkÅA nfg| l?kQy l|[kn
lHkkÅAA[1]

नाम कीर्तन के महत्व को स्वीकार किया गया है–

lfr Hkkfr&Hkkfr c[kkfu gfjin feyu ;fg tx tkfu;A
lg X;kudel veku Hkxfr vur lk| lc tkfu;A
vuekfu efuxu ldy futer cnekxl y[kkoghA
rfg eg| ldy vX;ku re ,d Hkxfr efDrfg ikoghA[2]

गाय रूपी पृथ्वी के उद्धार के लिए सब चतुर्भुज रूपी कृपासिंधु से प्रार्थना करते हैं–

t; fØikfl/k| folky ykpu ckgpkfj xnk/kjA
ejdr ljhj lihr ply fclf[k ukFk /kjk/kj
n[kh vdky vur y; rk r fØ;k iHk| vulj AA
;g xk| l:i mckfj;| efg ldy lj ro vupjAA[3]

जो रामकथा को सुनता है– वह मोक्ष को प्राप्त करता है। राम कृपा से ही अयोध्या का वास और साकेत की प्राप्ति हो पाती है। 'सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड' में राम नाम उपासना के विशेष महत्व का प्रतिपादन किया गया है। सामान्य मोक्षार्थियों के लिए तो मोक्षसिद्धि का यह सरलतम उपाय है। राम नाम उपासना से इसी जन्म में इसी लोक में मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इस तरह यहाँ पर उपासना को जीवन्मुक्ति प्रदायिका कहा गया है।

इस प्रकार कवि के अनुसार भक्ति तो सर्वजन सुलभ सरल राजमार्ग है।

---

1 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड,, छंद 20, चौ0 3–5 पृ0 41
2 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, छंद 20, पृ0 41–42
3 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, छंद–25, पृ0 50

भारतीय संस्कृति एवं वैष्णवधर्म में भक्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है तथा परमपुरुषार्थ मोक्ष की सिद्धि में इसकी महनीय भूमिका है।

¼घ½ *विभिन्न दार्शनिक विचारों का उल्लेख*

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। चिन्तन मनुष्य का विशिष्ट गुण है। इसी गुण के फलस्वरूप वह पशुओं से भिन्न समझा जाता है। अरस्तु ने मनुष्य को विवेकशील प्राणी कहकर उसके स्वरूप को प्रकाशित किया है। विवेक अर्थात् बुद्धि की प्रधानता रहने के फलस्वरूप मानव विश्व की विभिन्न वस्तुओं को देखकर उनके स्वरूप को जानने का प्रयास करता रहा है। मनुष्य की बौद्धिकता उसे अनेक प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए बाध्य करती है। वे प्रश्न इस प्रकार हैं– विश्व का स्वरूप क्या है? इसकी उत्पत्ति किस प्रकार और क्यों हुई? विश्व का कोई प्रयोजन है अथवा यह प्रयोजनहीन है? आत्मा क्या है? जीव क्या है? ईश्वर है अथवा नहीं? ईश्वर का स्वरूप कया है? ईश्वर के अस्तित्त्व का क्या प्रमाण है? जीवन का चरम लक्ष्य क्या है? सत्ता का स्वरूप क्या है? ज्ञान का साधन क्या है? सत्य ज्ञान का स्वरूप और सीमाएँ क्या हैं? शुभ और अशुभ क्या है? उचित और अनुचित क्या है? नैतिक निर्णय का विषय क्या है? व्यक्ति और समाज में क्या सम्बन्ध है? इत्यादि।

दर्शन इन प्रश्नों का युक्तिपूर्वक उत्तर देने का प्रयास है। दर्शन में इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए भावना या विश्वास का सहारा नहीं लिया जाता है, बल्कि बुद्धि का प्रयोग किया जाता है। इन समस्त प्रश्नों को देखने से लगता है कि सम्पूर्ण विश्व दर्शन का विषय है। 'दर्शन' की उत्पत्ति 'दृश्' धातु से हुई, जिसका अर्थ होता है 'देखना'। भारत में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है 'जिसके द्वारा परम तत्त्व को देखा जाय'।[1] भारत का दार्शनिक केवल तत्त्व की बौद्धिक व्याख्या से ही संतुष्ट नहीं होता बल्कि वह तत्त्व की अनुभूति प्राप्त करना

1 भारतीय दर्शन, उमेश मिश्रा, संस्करण 1990, पृ0 18

चाहता है।

चन्द्रधर शर्मा के अनुसार– ''दर्शन समाज, सभ्यता और संस्कृति की अमूल्य निधि है। किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति का वास्तविक परिचय पाने के लिए उसकी दार्शनिक विचारधारा का ज्ञान आवश्यक होता है।''[1]

चटर्जी एवं दत्त का मानना है कि ''मनुष्य और पशु भी अपने–अपने जीवन की रक्षा के लिए प्रयत्न करते हैं। पशु का जीवन प्रायः निरुद्देश्य होता है। यह सहज प्रवृत्ति से परिचालित होता है। किन्तु मनुष्य अपनी बुद्धि की सहायता लेता है। वह अपना तथा संसार का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार जीवन–यापन करना चाहता है। वह केवल अपने वर्तमान लाभ के सम्बन्ध में ही नहीं सोचता है, किन्तु भविष्य के परिणामों के विषय में सोचता है। मनुष्य में बुद्धि की विशेषता है। बुद्धि की सहायता से वह युक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। युक्तिपूर्वक तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को ही 'दर्शन' कहते हैं।''[2]

वास्तव में मनुष्य क्या है? उसके क्या लक्ष्य हैं? वह जीवन क्यों जी रहा है? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिन्हें प्रायः अनेक देशों के मनुष्य सभ्यता के प्रारम्भ से ही सुलझाने की चेष्टा करते आ रहे हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार सभी सम्प्रदायों में अपने–अपने ढंग से यह मान्यता रही है कि हमें परम तत्त्व का सीधा ज्ञान हो सकता है। वेद और उपनिषद, भगवद्गीता, चार्वाक दर्शन, जैन दर्शन, प्रारम्भिक बौद्ध दर्शन, शून्यवाद या माध्यमिक दर्शन, विज्ञानवाद या योगाचार दर्शन, स्वतंत्र विज्ञानवाद या सौत्रान्तिक योगाचार दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वैशेषिक दर्शन, न्याय दर्शन, पूर्वमीमांसा दर्शन, अद्वैत वेदान्त दर्शन, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन, शैव तथा शाक्त सम्प्रदाय आदि में दर्शन सम्बन्धी

---

1 पाश्चात्य दर्शन– चन्द्रधर शर्मा, पृ0 iii (निवेदन), संस्करण 1992

2 भारतीय दर्शन–चटर्जी एवं दत्त, पृ0 1, संस्करण 1994

व्याख्या भली प्रकार से की गयी है। मानव के अस्तित्व, उसके दैहिक, आत्मिक स्वरूप और व्यवहार तथा क्रियात्मकता, संसार का अर्थ आदि के सम्बन्ध में उक्त सभी दर्शनवादी मतों के माध्यम से पर्याप्त व्याख्या–विश्लेषण और वर्णन किया गया है। भारतीय साहित्य में भी प्रायः दर्शन मूलाधार के रूप में विद्यमान रहा है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हमें यह मालूम होता है कि ये सभी दर्शनों का एकमात्र लक्ष्य है– दुःख की परम निवृत्ति या परम आनन्द की प्राप्ति। इसके लिए एक ही मार्ग है, दूसरा नहीं। इसलिए जितने दर्शन हैं और हो सकते हें, वे सब ही ज्ञान के पथ हैं। प्रत्येक दर्शन उस मार्ग की एक–एक सीढ़ी है। परम पद तक पहुँचने के लिए प्रत्येक सीढ़ी को पार करना ही होगा।

जैसा कि भारत के प्राचीन और आधुनिक दार्शनिकों का मत है कि 'भारतीय दर्शन की विभिन्न ज्ञान–धाराओं का एक ही उद्गम और एक ही पर्यवसान है; उनकी अनेकता में एकता और उनकी विभिन्न दृष्टियाँ एक ही लक्ष्य को अनुसंधान करती है–यह उचित ही है। 'भागवत' के एक श्लोक में, सब दर्शन–शाखाओं के इस परम भाव को, बड़े सुन्दर ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :

lc lEckfnuh LFkfojcf)%
bfr ukuk i!l[;ku rÙokuk dfofHk% d'reAA

अर्थात् 'बूढ़े लोगों की बुद्धि, विवाद करते हुए युवकों में मेल (सम्वाद) करने की चिन्ता में रहती है। जगत के मूल तत्त्वों की गिनती (व्याख्या, संख्या) बुद्धिमानों (कवियों) ने नाना प्रकार से की है; सभी प्रकार, अपनी–अपनी दृष्टि से न्याय–संगत है। सबके लिए विद्वान लोग युक्तियाँ बताते हैं। उनमें कोई

अपरिहार्य विरोध नहीं है।'[1]

मुख्यतः छह आस्तिक दर्शनों (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त) और तीन नास्तिक दर्शनों (चार्वाक, बौद्ध और जैन) को ही लिया जाता है। ये सभी दर्शन, चाहे आस्तिक या नास्तिक हों, परस्पर सापेक्ष हैं और इन में आगे की तरफ एक के बाद दूसरे का स्थान है। परम पद तक पहुँचने के लिए प्रत्येक दर्शन की नितान्त अपेक्षा है और ये सभी दर्शन एक ही सूत्र में बंधे हुए हैं।[2]

अतः स्पष्ट है कि सभी दर्शनों में परस्पर पूर्ण सामंजस्य है और परमानन्द की प्राप्ति के लिए एक दूसरे के सहायक हैं। साहित्यकारों ने भी जीवन की महत्ता उसके अर्थ, मानव के व्यवहार, संसार–सागर की दशा–दिशा, लौकिक और पारलौकिक दशाओं पर अपने विशिष्ट विचार दिये हैं।

कवि रुद्र प्रताप सिंह ने भी 'सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण' में दर्शन का आधार लिया है। कवि के काव्य में जो विचार तत्त्व 'दर्शन' के निकट पड़ते हैं– वे कवि के काव्य में स्वतः अवतरित लगते हैं– प्रयत्न साध्य नहीं। महाकाव्य का भली–भाँति अध्ययन किया जाए तो हम पाते हैं कि उनके महाकाव्य में जीव, ब्रह्म, संस्कार की व्याख्या करने वाले विविध दर्शन व्यक्ति, परिवार समाज, राष्ट्र आदि के लिए इनकी उपयोगिता का प्रबन्ध और मार्ग प्रशस्ति भी मिलती है। कवि ने अपने महाकाव्य में प्राचीन भारतीय ग्रन्थों और दर्शन का आधार लिया है।

¼i½ *चार्वाक दर्शन*

नास्तिक दर्शनों में सर्वप्रथम चार्वाक दर्शन की ही गणना होती है। उसके मत में देहातिरिक्त आत्मा का अस्तित्त्व नहीं है। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त कोई प्रमाण

---

1 उद्धृत भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, पृ0 26, चतुर्थ सं0 1983

2 भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, पृ0 19, संस्करण 1990

भी नहीं है। अतः इसके लिए स्वाभाविक है कि लौकिक जीवन में अर्थ–संग्रह, भोग–वैशिष्ट, आधिपत्य, यश, उत्कर्ष आदि प्राप्त करना ही कर्म का लक्ष्य हो सकता है।[1]

ईश्वर और वेद के प्रामाण्य का सर्वथा खण्डन करने के कारण यह 'नास्तिक दर्शन' है।[2] इस दर्शन में पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि) और वायु आदि जड़–तत्त्वों की सत्ता स्वीकार की गयी है।[3] अतः चार्वाक नामक व्यक्ति विशेष के द्वारा प्रचारित होने के कारण यह चार्वाक दर्शन कहलाने लगा। 'चारू और वाक् के योग से चार्वाक शब्द बनता है जिसका अर्थ है सुन्दर (चारू) वचन (वाक्) वाले।'[4]

चार्वाक दर्शन का कोई स्वतंत्र प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। प्रत्येक भारतीय दर्शन की शाखा में प्रायः चार्वाक दर्शन का खण्डन मिलता है। वर्तमान युग में चार्वाक दर्शन की अधिकतर सामग्री अन्य दर्शनों में चार्वाक–खण्डन से ही प्राप्त होती है तथा कुछ सामग्री इतस्ततः विकीर्ण रूप में प्राप्त होती है। जैसे– महाभारत, रामायण इत्यादि में।

कवि रूद्रप्रताप सिंह सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण में चार्वाक मत वर्णन करते हुए कहते हैं–

,fg Hkkfr dfg tkckfy vfr rilkfy Hkklj Lo[kekA
lk mfDr tfDr cukojh lfu dgm jfcdy v[kHkkA
iHk dly lfr lc lkL=lglg HkfDr Ørl X;kufg ygA
lfr nf[k :f[k vlá ckuh fufn lkL=Ug dk dgAA[5]

cn&fcfufnd cpu lfu pkjckd&er tkfuA

---

1 कल्याण, धर्मशास्त्रांक (नवीन संस्करण), गीता प्रेस, गोरखपुर, धर्म के लक्षण, पृ0 64
2 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, चतुर्थ संस्करण, 1986, पृ0 112
3 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, चतुर्थ संस्करण, 1986, पृ0 112
4 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, चतुर्थ संस्करण, 1986, पृ0 113
5 रामखण्ड रामायण, अयोध्याकाण्ड, छन्द सं0 136, पृ0 354,

:nirki l:"V gkb cky: lkjx&ikfuAA[1]

pkokd d: vulkj&यज्ञ, पूजन, दान, तपस्या इत्यादि बातें बताने वाले ग्रन्थ बुद्धिमान् मनुष्यों ने दान की ओर लोगों की प्रवृत्ति कराने के लिए ही बनाये हैं। वह कहता है कि इस लोक के सिवा कोई दूसरा लोक नहीं है (अतः वहाँ फल भोगने के लिए धर्म आदि के पालन की आवश्यकता नहीं है) जो प्रत्यक्ष राज्यलाभ है, उसका आश्रय लीजिए, परोक्ष (पारलौकिक लाभ) को पीछे ढकेल दीजिए।

राम चार्वाक मत का खण्डन करते हुए कहते हैं–

ukLrhdh ckuh lfu jkekA rke ci[k fuil r cy/kkekAA
gfj&in xeu dj =; jkgA lR; /kefcn de ljkgAA
,fg idkj e/kk tkb lk ukfLrd&/kh tkfuA
Hkk[kr vblu er n[kn gkr u rEgfg xykfuAA[2]
gm ukfLrd&er iHkfg u ek[kkA ukLrhdh er ufg vfHkyk[kkAA
um ukfLrd vkfLrd lc dkykA dky tkb py ukfLrd&pkykAA[3]

राम नास्तिक मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि जो पुरुष धर्म अथवा वेद की मर्यादा को त्याग देता है, वह पापकर्म में प्रवृत्त हो जाता है। उसके आचार और विचार दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं; इसलिए वह सत्पुरुषों में कभी सम्मान नहीं पाता है। सत्य का पालन ही राजाओं का दया प्रधान धर्म है– सनातन आचार है, अतः राज्य सत्यस्वरूप है। सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं 'दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद–इन सबका आधार सत्य ही है, इसलिए सबको सत्यपरायण होना चाहिए–

---

1 रामखण्ड रामायण, अयोध्याकाण्ड, दो0सं0 585 पृ0 354
2 रामखण्ड रामायण, कोशलापथ, दोहा 594, पृ0 357,
3 रामखण्ड रामायण, कोशलापथ, छंद 137 के पूर्व की 3 व 4 चौपाई, पृ0 358

;Fkk gh pkj% l rFkk fg c)
LrFkkxra ukfLrde= fof)A
rLekf) ;% 'kD;re% iztkuka
l ukfLrds ukfHkeq[kks cq/k% L;krAA[1]

वाल्मीकि जी कहते हैं कि 'जैसे चोर दण्डनीय होता है, उसी प्रकार (वेद विरोधी) बुद्ध (बौद्धमतावलम्बी), भी दण्डनीय है। तथागत (नास्तिक विशेष) और नास्तिक (चार्वाक) को भी यहाँ इसी कोटि में समझना चाहिए।

कवि एक दोहे में 'चारबाक' (चार्वाक) दर्शन के परित्याग के लिए प्रेरित करता है क्योंकि यह मार्ग साक्षात् कलंकपथ है–

dYdh&in cnu djs ob flxjs efgikyA
pkjckd er R;kfx lc pyfga dyadh pkyAA[2]

इस प्रकार चार्वाक दर्शन भारतीय दर्शन में अपना एक अनूठा स्थान रखता है। वह किसी भी भारतीय दर्शन से मेल नहीं खाता। यह परंपरागत विचारों का कट्टर विरोधी हैं फिर भी, इसका महत्व कम नहीं है।

चार्वाक दर्शन में दोषों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह दर्शन पूर्णरूपेण निरर्थक है। चार्वाक ने भारतीय विचारकों को सोचने का एक नया ढंग दिया है। भारतीय दर्शन की कई त्रुटियों की ओर इन्होंने विचारकों का ध्यान आकृष्ट किया है। वैदिक परंपरा में अंधविश्वास, रूढ़िवादिता ढोंग आदि की भरमार हो गयी थी। चार्वाक की आलोचनाओं ने भारतीय विचारकों को इन दोषों के प्रति जागरूक बनाया। अतः चार्वाक के भौतिकवादी दर्शन ने अप्रत्यक्ष रूप में अन्य भारतीय दर्शनों को वैचारिकता की नई दिशा दी है। इस प्रकार, भारतीय दर्शन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

---

1 वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्डम्, सर्ग 109, श्लोक 34 पृ0 468,
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधापथ उत्तरार्ध, द्वितीय खण्ड, दो0 2410, पृ0 1099

¼ii½ *बौद्ध दर्शन*

महात्मा बुद्ध के मूलभूत उपदेश चार आर्य–सत्य हैं। ये चार आर्य–सत्य ही दर्शन के मूलाधार है। 'महावग्ग' में इन आर्य–सत्यों को ही बौद्ध दर्शन की आधारशिला बतलाया गया है।[1] चार आर्य सत्य हैं– दुःख, दुःख–समुदाय, दुःख–निरोध (निर्वाण) और दुःख निरोध मार्ग अर्थात् निर्वाण–मार्ग। अतः हम कह सकते हैं कि सांसारिक जीवन दुःखो से परिपूर्ण है, दुःखों का कारण है, दुःखों का अन्त है और दुःख अन्त का उपाय है। बौद्ध दर्शन जीवन और जगत को दुःखमय मानता है। जिस समय बुद्ध का पदार्पण हुआ, उस समय सर्वत्र तत्त्वशास्त्र का ही प्रचलन था। जनसाधारण और विद्वज्जन दोनों ही तत्त्वशास्त्रीय प्रश्नों के समाधान में दिन रात लगे रहते थे। तत्त्वशास्त्र के अंतर्गत मुख्यतः आत्मा, विश्व एवं ईश्वर का अध्ययन किया जाता है। बुद्ध के समय इन विषयों पर नित्य विद्वानों और जनसाधारण के मध्य शास्त्रार्थ एवं वाद–विवाद होते रहते थे। बुद्ध से भी अक्सर इन प्रश्नों पर उनके विचार माँगे जाते थे, किन्तु वे इनके विषय में कोई भी मत देने में असहमति प्रकट करते थे। वे सदैव इन प्रश्नों के उत्तर पर मौन हो जाते थे। इसलिए कहा जाता है कि बुद्ध तत्त्वशास्त्रीय समस्याओं से तटस्थ रहा करते थे। इसी आधार पर उन्हें तत्त्वशास्त्रविरोधी भी कहा जाता है।[2] तत्त्वशास्त्र के विषय (आत्मा, विश्व, ईश्वर, पुनर्जन्म आदि) आदिकाल से ही विवादास्पद रहे हैं। प्रमुख समस्या दुःख से मानव को मुक्ति दिलाने की है। इसलिए बुद्ध तत्त्वशास्त्रीय प्रश्नों को बेकार एवं निरर्थक समझकर टाल देते हैं।

बौद्ध दर्शन बुद्ध के चार आर्य सत्यों में निहित है। इन आर्य–सत्यों में दूसरा आर्य–सत्य दुःख समुदाय है। यह सिद्धान्त अन्य सभी दार्शनिक विचारों का आधार है। बौद्ध दर्शन क्षणिकवाद में विश्वास रखता है। बौद्ध दर्शन जीवन और जगत को दुःखमय मानता है।

---

1 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, पृ0 232, चतुर्थ सं0 1986

2 भारतीय दर्शन, डा0 आर0बी0 शर्मा, पृ0 45, 2008 संस्करण

'रामखण्ड रामायण' में कवि बुद्ध के जिस चरित्र की रूपरेखा तैयार करता है, वह ऐतिहासिक बुद्ध से थोड़ा भिन्न है। यह भिन्नता बुद्ध के अवतार–प्रसंग में आयी है। यहाँ कवि बुद्ध को जाति से ब्राह्मण स्थापित करता है, जिसके अनुसार बुद्ध मगध के राजा अजिन ब्राह्मण के पुत्र थे। बचपन में बुद्ध का नाम मार्जिन था जो बाद में बुद्ध नाम से प्रचलित हो गया–

vftu fci ekx/k tx tkukA lkd}hi x#M dj vkukAA
Hkkjr mRrj vkjr jkt A cfp cykd lkm jfgr lekt AA
tjkl/k dy thju tkuhA fHkxfjo f}t v;uhm enkuhAA
frUg d Hkk ekftu ru; c) ykd i[;krA
/koy dl pid xmj fdy dj t fnx tkrAA[1]

कवि बुद्ध चरित्र का वर्णन करते हुए कहते हैं कि बुद्ध विष्णु के नवें अवतार हैं। इसको प्रामाणिक बनाने के लिए वह स्वयं बुद्ध के मुख से साक्ष्य प्रस्तुत कराने की कोशिश करता है– बुद्ध जन्म लेते ही अपने माता–पिता से कहते हैं कि मैं विष्णु का नौवां अवतार हूँ–

tUer tuuh tud luk,A gm gfj uoe :i njlk,A
r fcfLer y?k ckyd ckykA djc fxjk iHk vki vMkykAA[2]

बौद्ध दर्शन में अहिंसा पर बहुत जोर दिया जाता है। कवि इन सिद्धान्तों को भी कथा में लिखता है। जैसे–

,g Hke lc tho lekukA rY; dLV lc fudlr ikukAA
tho&cU/ku rk r ufg uhdkA rtg ekfu cp ikfpv

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2391, चौ0 1–4, पृ0 1092,

2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड,, दो0 2392/1–2, पृ0 1092

yhdkAA[1]

इस प्रकार उन्होंने सबको यह समझाया कि कोई भी जीव दुःख के बंधन से मुक्त नहीं है तथा दुःख किसी को प्रिय नहीं है। उससे छुटकारा पाने के लिए सब को प्रयत्न करना चाहिए। उनका तो एकमात्र ध्येय था समस्त जीवों के दुःख का अन्त किस प्रकार किया जा सकता है।

बौद्ध की संस्कृति भारतीय संस्कृति ही है और बौद्ध दर्शन भी भारतीय दर्शन है। प्राचीन परम्परा के अनुसार बौद्धों के मुख्य सिद्धान्तों के आधार पर तत्त्वदृष्टि से दार्शनिक विचारधारा के क्रमिक विकास को ध्यान में रखकर आध्यात्मिक विचारों का ही कवि ने वर्णन किया है।

¼iii½ *जैन दर्शन*

जैन दर्शन का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। जैन धर्म के दार्शनिक पक्ष पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वह आस्तिक और नास्तिक दर्शनों के बीच की एक कड़ी है।[2]

जैन दर्शन एक नास्तिक दर्शन कहा जाता है, और कुछ बातों में आस्तिक दर्शनों से इस का स्वाभाविक मतभेद भी है, तथापि यह भी उसी मार्ग का पथिक है जिससे होकर आस्तिक दर्शनों की विचारधारा बहती है।[3] दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति, या परम सुख की प्राप्ति, इनका भी चरम लक्ष्य है। कठोर तपस्या, साधना आदि के द्वारा कायिक, वाचिक तथा मानसिक क्रियाओं का नियंत्रण कर अन्तःकरण की शुद्धि करना एवं परमात्मा का साक्षात्कार करना, भी चरम उद्देश्य है। इसीलिए जैन लोग 'सम्यक् दर्शन', 'सम्यक् ज्ञान' तथा 'सम्यक् चारित्र', इन तीन 'रत्नों' की प्राप्ति के लिए जीवन भर प्रयत्न करते हैं। ये सभी बातें आस्तिक

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड, उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, छन्द 466/1–2, पृ0 1094,

2 भारतीय दर्शन, वाचपति गैरोला, पृ0 85, चतुर्थ सं0 1983

3 भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, पृ0 98, संस्करण, 1990

दर्शनों में भी है। अतएव यद्यपि जैनों को आस्तिक लोग 'नास्तिक कहते हैं, फिर भी दार्शनिक विचार में तथा ज्ञान के विकास में तो जैन दर्शन भी उसी सोपान परम्परा पर चढ़ा है जिस पर आस्तिक लोग चढ़े हैं। भेद है स्वाभाविक दृष्टिकोण का और एक ही मार्ग में आगे–पीछे रहने का।

जैन दर्शन का सामान्य अभिमत है कि संसार की समस्त वस्तुओं में स्थिरता और विनाश, इन दोनों का आवास रहता है।

एक श्लोक में जैन दर्शन के सार को निहित करके कहा गया है कि 'बंधन का हेतु तृष्णा (आस्रव) है। उसके निरोध (संवर) से मोक्ष की उपलब्धि होती है। आर्हत दर्शन का यही सार है–

vklok oU/kgr% L;kr lojk ek{kdkj.keA
brh; vkgrh efV% vU;n vL;k% iipueAA[1]

जैन दर्शन एक स्थिर चैतन्य की सत्ता पर विश्वास करता है और जैन दर्शन में अहिंसा पर बहुत बल दिया जाता है–

ee ekjx pkjh fuj; fcgkjh ;g ftfT tumin'k fn;kA
tk c/k e[k i[kb er vol[kb rkl firj xu ujd x;kAA[2]

कवि लिखता है कि जैन मतावलम्बी परस्पर लड़ पड़ते हैं। भगवान कल्कि जैन मत के अंधकार पर विजय का सूर्य प्रकाशित करते हैं–

yj iijLij tbuxu e;u e;u vfj jhfrA
dydh lj fNVdh fnlk vil tFkk re thfrAA[3]

जैनियों के समूल नाश के लिए भयंकर लड़ाई होती है और वे मारे जाते

---

1 भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, पृ0 85, चतुर्थ संस्करण, 1983
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, छन्द 466, पृ0 1095,
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2412, पृ0 1100

हैं जो शेष बचते हैं वे अन्त में वैष्णव मार्ग का अनुसरण करते हें–

^^dg| yfx dfgv dtbu lc ekjA tk tk ckfnv l|er gekjAA

cp| l|[k lkb lju i|iUukA Hk, cbLuoekjx /kUukAA[1]

रामखण्ड रामायण में कवि का वैष्णव धर्म के प्रति अटूट प्रेम प्रकट हुआ है। जैनियों ने कभी वैष्णव धर्म स्वीकार नहीं किया। वे सनातन धर्म के विरोधी थे। यह एक ऐतिहासिक सत्य है। इस कथानक की प्रस्तुति के लिए कवि जिस कल्किपुराण को इस कथा का आधार बनाता है। वह परवर्ती कल्कि पुराण न होकर इससे बहुत पहले का कोई कल्किपुराण हैं उसी में लिखा है कि भगवान कल्कि ने जिज्जिनियों (जैनियों) को परास्त किया और क्षणमात्र में रक्त की नदी बहा दी–

/oLre|/kk| fcnn.Mk fod'rk oØrk :pkA
v³xHk³xkk| jFkh lknh inkrh xt'kkHkukAA
:.Me|.Mk egh jDrk clk ek|lk&l|vkfn|rkA
dfYduk {k.kek=|.k d'rk jDrtyk unhAA[2]

अहिंसा को जैन दर्शन में परम धर्म माना गया है। अहिंसा को धर्म मानने वाले तो सभी भारतीय दार्शनिक हैं परन्तु अहिंसा को ही परम धर्म, मानव का सच्चा धर्म, मानव का सच्चा कर्म मानने वाले केवल जैन लोग हैं। तात्पर्य यह है कि किसी भी प्रकार की हिंसा को जैन धर्म में पाप माना गया है।

इस प्रकार जैन दर्शन की इस देश की परम्परा में अनेक देन है। उसकी तत्त्व–मीमांसा का नाम अनेकान्तवाद है। यह विरोधी वादों के समन्वय का सिद्धान्त है। जैन दूसरों के मतों का भी समुचित आदर करते हैं। यह भावना

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड दो0 2414, चौ0 4–5, पृ0 2414,

2 रामखण्ड रामायण, किष्किन्धापथ उत्तरार्द्ध द्वितीय खण्ड, छन्द 469–470, पृ0 1100

धार्मिक दुराग्रहों को दूर करने के लिए आवश्यक है। एकांगी दृष्टिकोण से मानव की दृष्टि कलुषित तथा कट्टर बन जाती है। इसे दूर तभी किया जा सकता है जब हम दूसरों के मतों में कुछ अच्छाई देखें। वर्तमान युग 'सर्व–धर्म–समन्वय' का युग हैं। इसमें कट्टरवादिता का अन्त आवश्यक है। जैनों का अनेकान्तवाद इसके लिए अत्यन्त उपयोगी है।

¼iv½ ***सांख्य दर्शन***

महामुनि कपिल द्वारा विरचित सांख्य दर्शन सम्भवतः भारत का प्राचीनतम दर्शन है। श्रुति, स्मृति, रामायण, महाभारत आदि पुरातन कृतियों में सांख्य–योग के विचारों के अनेकों उदाहरण मिलते हैं।[1]

विद्वानों ने 'सांख्य' के दो अर्थ किये हैं– संख्या तथा ज्ञान। कुछ विद्वान मानते हैं कि सांख्य का सम्बन्ध तत्त्वों की संख्या से है, क्योंकि सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्त्वों की गणना की गयी है। सम्भवतः इसी कारण भागवत में इसे तत्त्व संख्यान या तत्त्वगणन कहा गया है। दूसरा अर्थ है 'सांख्य' का तत्त्वज्ञान। यह तत्त्वज्ञान प्रकृति और पुरुष (शरीर और आत्मा; जड़ और चेतन) के पार्थक्य का ज्ञान है। यही सम्यक् ज्ञान 'सांख्य' का अधिक मान्य अर्थ है। गणना तथा ज्ञान दोनों अर्थों का प्रतिपादन करते हुए महाभारत में कहा गया है–

l[;k idor po] idfr p ip{krA
rÙokfu p prfo'kr] ru lk[;a idhfrreAA[2]

सांख्य द्वैतमूलक दर्शन है। प्रकृति और पुरुष उसके दो मूल तत्त्व हैं। प्रकृति–पुरुष संयोग ही जगत् की उत्पत्ति का कारण है।

सांख्य के प्राचीन सिद्धान्त वेदान्त से बहुत कुछ साम्य रखते हैं, क्योंकि

1 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, पृ0 168, 1986 संस्करण
2 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, पृ0 169

उसमें ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया गया था; किन्तु बाद में सांख्य निरीश्वरवादी हो गया। प्रकृति और पुरुष, दो मूल कारणों के अतिरिक्त, ईश्वर नाम की किसी तीसरी सत्ता को स्वीकार करने में सांख्य सर्वथा मौन है। यही कारण है कि गौतम बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों की आधारभित्ति को सांख्य की ठोस भूमि पर निर्मित किया। जैन और बौद्ध दोनों धर्म–सम्प्रदायों ने अहिंसावाद का परम लोकोपकारी सिद्धान्त भी सांख्य से ही अपनाया।[1]

प्राचीनों की उक्ति है– ^u fg lka[;le Kkue*, अर्थात् यथार्थ ज्ञान तो सांख्य ही में है, ऐसा ज्ञान दूसरे शास्त्र में नहीं है। जितने जिज्ञासु होते हैं, जो विद्वान हैं, जिन्हें दुःख निवृत्ति की इच्छा है, सभी को तात्त्विक ज्ञान की आवश्यकता है। बिना ज्ञान के किसी प्रकार की सिद्धि नहीं मिलती।[2]

भगवान् ने गीता में भी कहा है–

> ^u fg Kkusu ln`'ka ifo=feg fo|rs*[3]
> ^Kkua yC/ok ijka 'kkfUrefpjs.kkf/kxPNfr*[4]
> ^Kkusu rq rnKkua ;s"kka ukf'krekReu%*[5]
> ^xPNUR;iqujko`fRra Kkufu/kwrdYe"kk%*[6]

अतः अपना कल्याण चाहने वाला कोई भी मनुष्य नहीं है जिसे ज्ञान का प्रयोजन न हो। इसलिए सांख्यशास्त्र का अध्ययन, अनुशीलन अनादि काल से होता आया है, ऐसा अनुमान है। यही कारण है कि उपनिषद् से लेकर साहित्य तथा ज्योतिःशास्त्र के भी ग्रन्थों में सांख्यशास्त्र के विषयों का किसी न किसी प्रसंग में उल्लेख मिलता ही है।

---

1 भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, पृ0 253, चतुर्थ सं0 1983
2 भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, पृ0 269, सं0 1990
3 गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, अध्याय–4, श्लोक–38
4 गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, अध्याय–4, श्लोक 39
5 गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, अध्याय–5, श्लोक 16
6 गीता, गीताप्रेस गोरखपुर,, अध्याय–5, श्लोक 17

रामखण्ड रामायण के अरण्यकाण्ड में गोदावरी नदी के तट का एक प्रसंग है जहाँ अगस्त्य ऋषि सांख्य दर्शन तथा ज्ञान एवं भक्ति आदि का निरूपण करते हैं। इन संदर्भों को कवि रूद्र प्रताप वाल्मीकि रामायण से ग्रहण नहीं करते बल्कि इसकी प्रेरणा उन्हें तुलसीदास जी से प्राप्त हुई है। रामचरित मानस में यह संदर्भ इस प्रकार है–

rc j?kcj dgk efu ikghA rEg lu iHk njko dN ukghAA
rEg tkug tfg dkju vk;mA rkr rkr u dfg le>k;mAA
vc lk e= ng iHk ekghA tfg idkj ekjk efunkghAA
efu e ldku lfu iHk ckuhA iNg ukFk ekfg dk tkuhAA
rEgjb Hktu iHkko v?kkjhA tkum efgek dN d rEgkjhAA
Åefj r: fclky ro ek;kA Qy cãkM vud fudk;kAA
tho pjkpj tr lekukA Hkhrj clfg u tkufg vkukAA[1]

कवि रूद्रप्रताप सिंह तुलसीदास जी की इसी प्रेरणा से सांख्य दर्शन का निरूपण करने के लिए प्रवृत्त होते हैं–

rkel lPNe tkfu rUek=k HkU;k l ruA
:i x/k jl ekfu lCn Lil lnk HkuhAA
lNe ekf=dk ,fg voLFky Øeuk HkuhA
cy iy jrk nfg lkfur rr lvfLFk RodAA[2]

कवि रूद्र प्रताप, भगवान कपिल द्वारा उदित सांख्य दर्शन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

vf/kdkjh ;g lk[;er lrjr djr fccuA
lnn/kku lfcuhr vfr HkfDreku lk liuAA
:nirki viki fgr Hko rkiu flr HkkuA

---

1 रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अरण्यकाण्ड दो0 13, चौ0 1–7
2 रामखण्ड रामायण, अरण्यकाण्ड, सोरठा 34–35, पृ0 31

dgh tFkk efr lk[;er mfnr dfiy HkxokuAA[1]

कवि वैष्णव धर्म का अनुयायी है और जहाँ भी वह धर्म, दर्शन और ज्ञान की चर्चा करता है वहाँ उसका वैष्णव–प्रेम प्रभावी हो उठा है। उसके सांख्य दर्शन निरूपण में भी इसकी छाया देखी जा सकती है–

y[ku djh pmfcl eurk:A eb tfg vFk ykfx ru /kk:AA
pkfj gr yfx ee vorkjkA ikyu lk/k vlk/k l?kkjkAA
/kel LFkkiu fcy; v/kekA ,fg fgr ru /kfj t|fi pekAA
dfiy lk[;fcn ekrfg xkbA lkb fcnger gefg lukbAA
lk ge rEg lu dg fuiunuA lo erUg dj l[kjpnuAA
nRr ikb v=h cj jkekA yhUg tUe vkiu frUg /kkekAA
tkx fl) yfx ;g vorkjkA lk[; i[kj ftfedfiy dekjkAA
cnk)kj del vLFkkiuA ftfe e[kx ckth l[k FkkiuAA[2]

कवि उज्जैन नरेश राजा बिक्रमाजीत (विक्रमादित्य) के चरित–वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह राजा सांख्य, न्याय और धर्म का ज्ञाता था। कवि के शब्दों में कहें तो वह प्रत्यक्ष सांख्य, न्याय और धर्म (ही) था–

/kujklj lfr cnu lk vPNkA
lk[; U;k; v: /kel irPNkAA[3]

अतः भारतीय दर्शनों में सांख्य दर्शन का अपना स्थान है। इसका महत्व मनुष्य को कौन कहे स्वयं भगवान (श्रीकृष्ण) ने भी स्वीकार किया है। इसका महत्व बतलाते हुए भगवान ने कहा कि 'मैं सिद्धों में कपिल मुनि हूँ'। इससे स्पष्ट

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधापथ उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2551, पृ0 1158
दो0 2513, पृ0 1159
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड, दो0 2555, चौ0 1–8, पृ0 1159
3 रामखण्ड रामायण, राजपथ (उत्तरकाण्ड) विश्राम 51, श्लोक 365

है कि भगवान सबसे सिद्ध मुनि सांख्य के संस्थापक कपिल मुनि को ही मानते हैं।

वस्तुतः कपिल के द्वारा विरचित सांख्य आस्तिक दर्शनों में अग्रगण्य है। परन्तु जहाँ इसे इतना महत्वपूर्ण माना गया है। वहीं पर बड़े जोरदार शब्दों में इसका खण्डन भी हुआ है। जगद्गुरु शंकराचार्य सांख्य का खण्डन करते हुए कहते हैं कि यह 'प्रधान प्रतिपक्षी' है। इसका कारण यह है कि सांख्य अद्वैत वेदान्त के बिल्कुल निकट जान पड़ता है परन्तु वस्तुतः बहुत दूर है। सांख्य के प्रायः सभी सिद्धान्त अद्वैत वेदान्त के विपरीत है। निकट का शत्रु दूर की अपेक्षा अधिक विनाशकारी हो सकता है। संभवतः इसी आशय से शंकराचार्य इसे प्रधान प्रतिपक्षी स्वीकार करते हैं।

सांख्य का सर्वप्रथम सिद्धान्त कार्य–कारण का सिद्धान्त हैं कार्य और कारण का सम्बन्ध मानना तो कारणता की वैज्ञानिक व्याख्या के लिए आवश्यक ही है। परन्तु यह सम्बन्ध कैसा? सांख्य दर्शन के अनुसार कार्य कारण का रूपान्तर है। यह सिद्धान्त सांख्य की तत्त्व मीमांसा के लिए उपयुक्त है। प्रकृति परम कारण है जिसका रूपान्तर ही सम्पूर्ण जगत हैं यह सत्कार्यवाद का सिद्धान्त है जो असत्कार्यवाद से भिन्न है। शंकराचार्य भी सत्कार्यवाद मानते हैं। परन्तु उनके अनुसार यह सद् कारणवाद है, क्योंकि ब्रह्म ही मूल कारण है। सारा जगत सद् कारण का असद् विवर्त है। जगत का अस्तित्त्व दिखलायी पड़ता है। वस्तुतः इसका कारण (ब्रह्म) ही सत् है। स्पष्ट है कि सांख्य और वेदान्त (अद्वैत) में सत्कार्यवाद भिन्न है। इसी प्रकार सांख्य और अद्वैत–वेदान्त दोनों का अन्तिम सिद्धान्त मोक्ष है। दोनों के मोक्ष में साम्य प्रतीत होता है, परन्तु वस्तुतः भेद है। अद्वैत–मत में आत्मज्ञान ही मोक्ष है। इसका कारण ज्ञान है। ज्ञान अज्ञान का

अभाव है। अज्ञान के कारण ही आत्म में अनात्म का अध्यास होता है– मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ आदि। अज्ञान के नाश होने पर कर्ता, भोक्ता, सुख, दुःख आदि व्यवहार का विनाश हो जाता है तथा 'मैं' शुद्ध रूप में रह जाता है। यह ज्ञान होते ही मरणधर्मा जीव अमर हो जाता है। सांख्य में भी अज्ञान को ही बंधन तथा ज्ञान को ही मोक्ष का कारण माना गया है। ज्ञान या विवेक–ख्याति के द्वारा पुरुष को बोध हो जाता है कि पुरुष प्रकृति से भिन्न है। प्रकृति अचेतन, अनात्म है तथा पुरुष शुद्ध चेतन आत्म है। इस प्रकार बन्धन का करण प्रकृति या बुद्धि से तादात्म्य का अनुभव है। जब पार्थक्य का ज्ञान हो जाता है तब पुरुष मुक्त हो जाता है। परन्तु प्रकृति तो नित्य है। नित्य वस्तु का विनाश असम्भव है। पुनः पुरुष तो शुद्ध चैतन्य है। बंधन और मोक्ष तो प्रकृति का होता है पुरुष का नहीं। अतः मोक्ष सिद्धान्त की व्याख्या प्रकृति और पुरुष दोनों से नहीं हो पाती। व्यवहार में ज्ञान–मार्ग के लिए सांख्य और वेदान्त का एक साथ नाम लिया जाता है। परन्तु दोनों में सामंजस्य नहीं।[1]

¼v½ *योग दर्शन*

योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं। इसी कारण इस दर्शन को पातंजल दर्शन भी कहते हैं। योग दर्शन का साहित्य अन्य दर्शनों की भाँति विशाल नहीं, परन्तु यह अत्यंत वैज्ञानिक दर्शन है। सभी दर्शन योग का महत्व स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं। वेद, उपनिषद, स्मृति, पुराण, आदि सभी ग्रन्थों में योग की चर्चा मिलती है। यही कारण है कि अल्प साहित्य होते हुए भी यह भारतीय दर्शन का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है तथा इसका प्रचार और प्रसार बहुत है। अन्य दर्शनों की अपेक्षा इसकी एक अपनी विशेषता यह है कि यह सैद्धान्तिक ही नहीं, व्यावहारिक भी है। स्वस्थ शरीर तथा सबल आत्मा दोनों ही

---

1 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, 1986 सं0, पृ0 196

इसके प्रतिपाद्य विषय हैं। अन्य दर्शनों के समान यह दर्शन शरीर को हेय नहीं मानता, वरन् उपादेय समझता है। 'शरीर के स्वस्थ रहने से ही चित्त निर्मल होगा तथा चित्त की निर्मलता से ही आत्म–लाभ सम्भव है'।[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं। यह निरोध सहज कार्य नहीं, यह अभ्यास और वैराग्य से ही साध्य है।[2] इनमें प्रथम वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करना चाहिए। तत्पश्चात् अभ्यास द्वारा निरूद्ध संस्कारों को दृढ़ करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि योगाभ्यास–विषयक वैराग्य से चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है।

योग के आठ अंग माने गये हैं, जिन्हें अष्टांग योग कहते हैं। क्लेशों से मुक्त होने के लिए, चित्त को समाहित करने के लिए योग के आठ अंगों (साधनों) का अभ्यास करना आवश्यक है। ये हैं– 'यम', 'नियम', 'आसन', 'प्राणायाम', 'प्रत्याहार', 'धारणा', 'ध्यान', 'समाधि'।[3] इन अंगों के अनुष्ठान से अविद्या का नाश हो जाता है तथा यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है।

कवि रूद्रप्रताप के अनुसार–

HkfDr tkx v: fuxu X;kukA nkÅ dk ifjikd lekukAA[4]

योग के आठ अंगों की व्याख्या करते हुए कवि कहते हैं–

lU;kl tkx vLVkxA HkfDr tkx /keki nb vxAA
cgfj ifcfÙkfufcfÙk Mxj nkA vkRe fcpkj fcjkx exj nkAA
bUg iFk lxu fuxum blkA fcLoLFkh Hkkou fcl chlkAA
HkfDr tkx yPNu ltx cuu fdv ro rhjA

---

1 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, पृ0 197
2 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, पृ0 200
3 भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, संस्करण 1990, पृ0 328
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2550/चौ0 1, पृ0 1157

dkykC;fDr xrh dgh fcLo mj:rj FkhjAA[1]

इन अष्टांगो के अनुष्ठान में साधक ज्यों–ज्यों अग्रसर होता है त्यों–त्यों अशुद्धि या अविद्या का नाश होता जाता है।

fccl vfc|k l:fl:fr thouA t:fg i:fcl: xfr Hky| vihouAA[2]

योग की पूर्ण सिद्धि से साधक में विवेक ख्याति की उत्पत्ति होती है–

fu%dy:l tkxhtu tkbA vTctkfu t|r i:fclfg: lkbA[3]

HkfDr tkx l|fiukdkjh dA rkfg tfur fcjkxdkjh dAA
r: r: mnHko fuely X;kukA X;ku tfur in fØLu lekukAA[4]

अतः इन योगांगो का प्रयोजन है विवेक ज्ञान की प्राप्ति तथा अशुद्धि या अविद्या का नाश–

;g l:lkj tkx lc tkxhA ;g vfHker vlx vf[kykxhAA
fc[ke fceDr Hk, xk lkjA fuxu cãfujhPNuokjAA[5]

विवेक ज्ञान से ही कैवल्य लाभ होता है। इस प्रकार योग दर्शन के ये आठ अंग साधक की सद्गति के कारण हैं। इनके सम्यक् अनुष्ठान से पाप का विनाश, ज्ञान का उदय और विवेक की प्राप्ति होती है–

vul:; Hkrfg r: jr: l|l[kkfujr tku: fi:;A

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2550, चौ0 6,7,8, पृ0 1158

2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2551, चौ0 1, पृ0 1158

3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2546, चौ0 1, पृ0 1156

4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड, चौ0 7–8, दो0 2548, पृ0 1156

5 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड, उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड दो0 2549, चौ0 4, 5, पृ0 1157

d|y cfgj tfur fcjkx t: v: lkrjr l:rr fg;AA
fueRljk lfp :fp gjh ij rkfg tkx [kxLojkA
tk l:ou dfjgfg lnn/kku /kju iBbu Hkkxh LojkAA[1]

मनुष्यों के स्वभाव, गुण, अधिकार भिन्न–भिन्न हैं, इस कारण योग मार्ग भी भिन्न–भिन्न है; पर गंतव्यस्थान एक ही है।

इस तरह से योग दर्शन में ईश्वर के अस्तित्त्व को प्रमाणित किया गया है। किन्तु उसको जिन प्रमाणों से समर्थित किया गया है उनसे योगदर्शन का ईश्वर हमें किसी महत्वपूर्ण पद का अधिष्ठाता नहीं दिखायी देता। सांख्य में जो स्थान विवेक को दिया गया है वही स्थान योग में ईश्वर को दिया गया है।[2]

¼vi½ *वैशेषिक दर्शन*

वैशेषिक दर्शन अत्यंत प्राचीन है। इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में अनेक मत–मतान्तर हैं। इतना तो सर्वमान्य है कि न्याय–वैशेषिक में वैशेषिक दर्शन ही प्राचीन है, क्योंकि न्याय दर्शन के प्रारम्भिक ग्रन्थ गौतम–सूत्र तथा वात्सायन भाष्य में वैशेषिक के सिद्धान्त स्पष्टतः उपलब्ध हैं।[3] श्री माधवाचार्य के अनुसार विशेषण में प्रणीत को ही वैशेषिक कहते हैं।[4]

इसी क्रम में यदि युक्ति प्रधान कणाद ऋषि के वैशेषिक शास्त्र को देखें तो उस शास्त्र की भी सृष्टि विषयक विचारों के साथ संगति नहीं बैठ पाती है– क्योंकि वैशेषिक मत में परमाणु को जगत् का कारण माना गया है। जबकि परमाणु से भी जगत् की उत्पत्ति उचित नहीं है। कणाद ऋषि के मत में स्थूल पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु इन चारों द्रव्यों के आदि कारण मुख्यतः चार प्रकार के

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड, छन्द 509, पृ0 1158
2 भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, 1983, (चतुर्थ संस्करण), पृ0 300
3 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, पृ0 363, सं0 1986
4 भारतीय दर्शन, परिचय, पं0 हरिमोहन झा, प्रथम संस्करण, पृ0 2

परमाणु है। यह परमाणु अवयव रहित है। अर्थात् इनका आकार इतना छोटा है कि उनके अवयव नहीं हो सकते। अतः ईश्वर की इच्छा से ये परमाणु आपस में मिल जाते हैं और द्वयणु, त्रिसरेणु आदि क्रमशः बनते जाते हैं। इसी क्रम में स्थूल पृथ्वी आदि दृव्य उत्पन्न होते हैं जिनसे जगत् की संरचना होती है। कणाद जी के इस मत में यह विचारणीय है कि एक परमाणु के साथ दूसरे परमाणु का जो मिलान अर्थात् संयोग है वह क्या सर्वांश से सहयोग है। अथवा एकांश से सहयोग है। सिद्धान्ततः जितने भी सहयोग हैं, वे सभी एकांशगत होते हैं और परमाणु में किसी भी प्रकार का कोई अंश नहीं होता। तो इनका संयोग किस प्रकार का हुआ? यदि उक्त दोनों पक्षों में पहले पक्ष पर विचार करे कि एक परमाणु का दूसरे परमाणु से सर्वांश सहयोग होता है तो इस पक्ष में एक परमाणु से दूसरा परमाणु अवश्य लीन हो जाना चाहिए। तदुपरान्त दो विकल्प सामने आते हैं पहला–वह क्यों नहीं लीन हुआ? दूसरा–यदि लीन हो गया तो परमाणु संयोग से उत्पन्न जगत् परमाणु से बड़ा नहीं होना चाहिए क्योंकि जितने भी संयोग हैं वे कोई भी सर्वांश से नहीं होते। जैसे दो ईटों के संयोग से एक बहुत बड़ी दीवार तैयार हो जाती है किन्तु उस दीवार में जो दो ईंटो का संयोग है वह एक ओर से ही होता है। शेष अन्य भाग संयुक्त नहीं रहता। इसी प्रकार सूत्रों का संयोग भी आपस में एक ओर से है और शेष भाग बचा रहता है। किन्तु कणाद के मत से परमाणु निरवयव है। अतः उक्त ईट या सूत्र के एकांश संयोग से समान परमाणु का संयोग नहीं हो सकता। फलतः सर्वांश से संयोग मानना पड़ेगा। यद्यपि सर्वांश शब्द यहाँ परमाणु के विषय में नहीं कहा जा सकता, क्योंकि परमाणु अवयव रहित और अंश रहित है। परन्तु सर्वांश शब्द से यही ज्ञात होता है कि परमाणु संयोग से बचा नहीं रह सकता। प्रत्यक्ष में परमाणु के संयोग से उत्पन्न जगत् बहुत बड़ा दिखलायी पड़ता है। अतः उपर्युक्त मत ठीक नहीं है तथा जो दूसरा पक्ष है जिसमें परमाणु का अवयवों के साथ संयोग होता है। यदि यह माना जाये कि परमाणु के अवयव नहीं होते तो यह सिद्धान्त ही नष्ट हो

जाता है। वरन् परमाणु का सिद्ध होना ही कठिन दिखता है। उन पर भी वही दोष अर्थात् परमाणु के अवयव जो दूसरे परमाणु के अवयव से मिलकर बनते हैं वे सर्वांश से मिलते हैं या एकांश से तथा इनमें एक परमाणु के अवयव दूसरे परमाणु के अवयव में लीन क्यों न हुए और यदि लीन होंगे तो उन अवयवों के संयोग से उत्पन्न जगत् अवयवों से बड़ा कभी नहीं हो सकता अर्थात् परमाणु के अवयवों के संयोग से उत्पन्न छोटा ही था। अब तो परमाणु के अवयव से बड़ा किसी प्रकार नहीं हो सकता है। अतः इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि इस मत में छोटेपन का दोष लगा रह जाता है। यदि एक क्षण के लिए यह मान लिया जाए कि–परमाणु के अवयव के भी अवयव होते है– तो किसी को तो अवयव रहित मानना ही होगा और यही सबसे बड़ा दोष होगा। यदि किसी को अवयव रहित न मानकर यह मान ले कि अवयव के ही अवयव हैं तो एक ऐसी अनवस्था हो जायेगी कि आँख की पुतली का एक अंश ही सुमेरू पर्वत की बराबरी को प्राप्त करेगा। क्योंकि दोनों में ही अनगिनत अवयव ठहरे हुए हैं। अतः उस स्थिति में इस दोष का निवारण कैसे होगा? वस्तुतः पदार्थ को लघु एवं दीर्घ ज्ञापित करने में उसमें निहित परमाणुओं की अल्पता एवं दीर्घता ही कारण होती है और होता यह है कि अवयव के अवयव एवं अवयव के भी अवयव इसी प्रकार कहते चले जाते हैं। वस्तुतः इसी प्रकार से ही सुमेरू पर्वत एवं आँख की पुतली दोनों के ही अंशों में अनन्त अवयव ठहरे हुए है और यदि किसी के अवयव का अन्त न हुआ तो दोनों के ही अंश आपस में अनन्त–अवयवत्व रूप धर्म से समतुल्य सिद्ध होंगे। अतः इस मत में स्थिरता एवं सच्चाई निर्दिष्ट नहीं होती क्योंकि इसमें इतने लघु तत्त्व की इतने बड़े तत्त्व से तुलना की गयी है जो कि स्वयं में एक बहुत बड़ा दोष है।

¼vii½ *न्याय दर्शन*

न्याय दर्शन की सत्ता अत्यंत प्राचीन है। न्याय दर्शन तर्कवादी दर्शन है।

लगभग विक्रमी पूर्व से लेकर आज तक अबाध रूप से उसका अध्ययन–अध्यापन, निर्माण और मनन, अनुसंधान होता आ रहा है।

न्याय दर्शन की समृद्धि में गुप्त युग का बड़ा योग रहा है। इस युग में न्याय सूत्रों पर वृहद् भाष्यों और वार्तिक ग्रन्थों का निर्माण हुआ। इस युग में भी न्याय सूत्रों की दुरूहता को भाष्यकारों ने सुगम बनाया और इससे न्याय दर्शन की लोकप्रियता बढ़ी।

आधुनिक न्यायशास्त्र के प्रवर्तक गौतम थे। इन्होंने स्थूल जगत् के तत्त्वों पर विचार किया और उनके ज्ञान के लिए प्रमाणों का निरूपण किया। इनका एकमात्र ग्रन्थ है 'न्यायसूत्र'। यद्यपि इस ग्रन्थ का लक्ष्य है निःश्रेयस् या परमतत्त्व की प्राप्ति, तथापि विशेष रूप से यह प्रमाणों के द्वारा तर्क करने की शिक्षा देता है। इसीलिए इस शास्त्र का 'न्यायशास्त्र', 'तर्कशास्त्र', आदि नाम हैं।

न्यायशास्त्र का मुख्य लक्ष्य है 'प्रमान' और 'प्रमेय' के विशेष ज्ञान से निःश्रेयस् को प्राप्त करना, किन्तु जब तक 'संशय', 'प्रयोजन', 'दृष्टान्त', 'सिद्धान्त', 'अवयव', 'तर्क', 'निर्णय', 'वाद', 'जल्प', 'वितण्डा', 'हेत्वाभास', 'छल', 'जाति', तथा 'निग्रहस्थानों' का विशेष रूप से 'ज्ञान' नहीं होगा, तब तक 'प्रमेय' का ज्ञान अच्छी तरह से नहीं हो सकता। अतएव गौतम ने कहा कि उपर्युक्त सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मुक्ति मिलती है। इस शास्त्र में इन सोलहों पदार्थों के लक्षणों की प्रमाणों के द्वारा परीक्षा की गयी है।[1]

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द से ईश्वर की सत्ता सिद्ध की गयी है। ईश्वर लौकिक का नहीं वरन् अलौकिक प्रत्यक्ष (योगज) का विषय है। योगी–लोगों का अन्तःकरण नितान्त शुद्ध होता है। अतः वे आन्तरिक नेत्र (दिव्य–चक्षु) से ईश्वर

---

1 भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, पृ0 180, सं0 1990

का प्रत्यक्ष करते हैं। ईश्वर का स्वरूप सांसारिक नेत्रों से नहीं देखा जा सकता।[1]

सम्भवतः इसी कारण गीता में भगवान (कृष्ण) ने अर्जुन को दिव्य चक्षु देकर अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान कराया–

firkgeL; txrks ekrk /kkrk firkeg%A
o|| ifo=ek³dkj _Dlke ;tjo pAA[2]

हे अर्जुन! इस समस्त चराचर विश्व का धाता अर्थात् धारण–पालन करने वाला मैं ही हूँ। समस्त कर्मों का फल देने वाला भी मैं ही हूँ। इस जगत् का पितामह मैं ही हूँ, ज्ञानगम्य तथा ज्ञानस्वरूप पवित्र ओंकार और ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ, इत्यादि रूप से निर्दिष्ट ईश्वर शब्द प्रमाण से सिद्ध है।

अतः ईश्वर को अलौकिक प्रत्यक्ष का विषय तो प्रायः सभी मानते हैं। ईश्वर को अनुमान का विषय बतलाना तो नैयायिकों की देन है।

इसलिए भारतीय दर्शन संप्रदायों में, विशेष रूप से ईश्वर के विरोध में सांख्य दर्शन में जो शंकाएँ प्रस्तुत की गई हैं, न्याय में और वैशेषिक में उसका बड़े विस्तार से समाधान किया गया है; और ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करके उसी को जगत् का कर्त्ता सिद्ध किया गया है।

¼viii½ ***मीमांसा दर्शन***

मीमांसा दर्शन के आदि आचार्य महर्षि जैमिनि हुए। महर्षि जैमिनि ने विधिरूप अर्थ को धर्म कहा है 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'। जब तक धर्म का ज्ञान नहीं होता तब तक विधि को ठीक–ठीक नहीं पहचाना जा सकता है। धर्म के समुचित ज्ञान के लिए ही जैमिनि ने अपने दर्शन में विधि की मीमांसा की है। इसीलिए जैमिनि के दर्शन का नाम 'मीमांसा दर्शन' पड़ा।

---

1 भारतीय दर्शन, डा0 बी0एन0 सिंह, पृ0 485, सं0 1986
2 गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, अध्याय–9, श्लोक–17

मीमांसा दर्शन का विषय है वैदिक विधि–निषेधों का आशय समझाना, उनकी पारस्परिक संगति बैठाना और युक्तियों के द्वारा कर्मकाण्ड के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना।

श्रुति, स्मृति, पुराण आदि अनेक विषयों के धर्म ग्रन्थों से विदित है कि धर्माचरण से इच्छित फल की प्राप्ति होती है। यइ इच्छित फल लौकिक भी हो सकता है और परलौकिक भी। इस इच्छित फल की उपलब्धि तभी संभव है, जब हम धर्म का वास्तविक स्वरूप जान लें।

महर्षि जैमिनि के मीमांसा दर्शन का पहला सूत्र है 'अथातो धर्म जिज्ञासा'। अर्थात् जन्म–जन्मान्तर के इच्छित कार्यों की उपलब्धि और नानाविध दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति के अनन्तर परमानन्द की प्राप्ति जिस धर्म के द्वारा सुलभ होती है ऐसे धर्म को जानने की अभिलाषा का होना स्वाभाविक ही है। विधि–विधान पूर्वक जिस कर्म को करने से जन्मांतर में परमानंद की प्राप्ति हो उस वेद प्रतिपाद्य विधिवत कर्म का अनुष्ठान ही धर्म है। यही मीमांसा दर्शन का विषय है।

यह मीमांसा दर्शन वेद वाक्यों के अर्थ का निश्चय भली–भाँति करा देता है किन्तु सृष्टि के विषय का वर्णन स्वतंत्र रूप से नहीं कराता है। अतः जैमिनि के मीमांसा दर्शन में सृष्टि की उत्पत्ति विषयक विवेक प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि इसमें सृष्टि की उत्पत्ति का कोई भी वर्णन नहीं किया गया है। यह मात्र वेद वाक्यों पर ही विचारणीय हैं। जैमिनि ने अपने मीमांसा शास्त्र में लिखा है– ^^vkEuk;L; fØ;kFkRoknkuFkD;ernFkkuke** उन्होंने उक्त सूत्र में यह कहा है कि वेद का अभिप्राय मात्र कर्म में ही है किन्तु उनकी इस बात का खण्डन उपनिषद् का तत्त्व जानने वाले आचार्यों ने किया है। उन आचार्यों का यह मत है– कि कर्म में ब्रह्म के प्रतिपादक वाक्यों का तात्पर्य किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता। क्योंकि यदि ब्रह्मज्ञान का कुछ फल न होता तो उन वाक्यों का अर्थ व्यक्ति को कर्म की ओर आकृष्ट करता जबकि व्यक्ति को उत्तम फल का प्रदाता

ब्रह्मज्ञान के सदृश अन्य कोई भी नहीं है। क्योंकि इस ब्रह्मज्ञान के द्वारा जीव के अनादि काल से संचित कर्मक्लेश नष्ट हो जाते हैं और आत्मस्वरूप आनन्द प्राप्त होता है। तब ब्रह्मज्ञान के उत्पादक उन उपनिषद वाक्यों का अर्थ जीव के चित्त को खींचकर कर्म की ओर नहीं ले जा सकता है। इस प्रकार कवि के अनुसार उपनिषद वाक्यों का तात्पर्य कर्म में नहीं हो सकता है। उन वाक्यों से यही सिद्ध होता है कि सच्चिदानन्दस्वरूप वस्तु एक ही है तथा इस संसार की भेद दृष्टि अर्थात् पशुदृष्टि के समान अज्ञान में कल्पना की गयी है।

¼ix½ ***वेदान्त दर्शन***

परा विद्या होने के कारण वेदान्त उत्तम अधिकारी के चिन्तन का विषय है। उत्तम अधिकारी वह है जिसका अन्तःकरण ऐहिक तथा जन्मान्तर के कर्म, उपासना द्वारा शुद्ध हो चुका है। वही इस परमार्थ ज्ञान में प्रवृत्त हो सकता है। कर्मकाण्ड में विहित यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय आदि कर्मों से जिनका हृदय विशुद्ध है, जो योग साधन द्वारा जितेन्द्रिय तथा विषयादिरहित हो गये हैं, ऐसे उत्तम मुमुक्षु पुरुषों के लिए अध्यात्म विद्या के उपदेश की इच्छा से प्रस्तुत दर्शन वेदान्त का निर्माण हुआ।

जगत्, जीव, और ब्रह्म के वास्तविक स्वरूपों का विवेचन तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों की मीमांसा करना वेदान्त दर्शन का प्रतिपाद्य विषय है।

रामखण्ड रामायण, अटवीपथ में कवि वेदान्त दर्शन का निरूपण करने का प्रयास करता है। भक्ति और वेदान्त के इस दर्शन पर वैष्णव भक्ति का प्रभाव अधिक है। कवि के वैष्णव धर्मी होने का प्रभाव यहाँ भी दिखता है। वह वैष्णव धर्म के प्रति कितनी आस्था रखते हैं और कितनी उदारता इसे देखने के लिए अटवीपथ की गहराई में उतरना होगा–

LFkkoj txe cg uHk NkuhA iHk cãk dkjt txtkuhA
jktl xu dfj fcf/k djrkjA ikyfg fcLu lR;xr /kkjAA

rkel y; djrk gj gk:A =; xqu rRo =; lqj djrk:AA

tkfxzr Lolu lq[kIrk tkbA fcfRr cf) xqu rRle gkbAA

x x x x x

ukFk lenqnHko gbZ ,d ek;kA ftfe bPNk rq cLrq lkgk;kAA

rkl q /kkjuk rq Hkxokuk gkr xquX; dj rl ekuAA

x x x x x

f}fc/kk rRo ek;k fcHkkx fc|k·fc|k HkkfrA

ekxZ ifcÙk fujr lnk lkb vfc|k tkfrAA

x x x x x

fujr vfc|k uj lqlkjhA fc|kjr lqefDr iFk pkjhAA

ukFk HkfDr&jr rRo equtkihA fc|k iknHkkr rq FkkihAA

rkfg vfc|k Mj u dnkihA vijmykfdd Hk;ufgq C;kihAA

jmjs HkfDr fujr tu tbA efDreku ufgq lfflr lbAA

HkDrkfeRr tkb tho fcgkbA liuag lks u ijk xfr ikbAA

cgq/kk mfDr jke dsfg dktA dgmq lkj lfu, j?kqjktAA

lk/kq lx fdy ekPN d grA lk/kq dgh dk dgq j?kqdsrAA

lefpRrh fcfLigk u bZ[;kA nkr islkr HkDr equ fl[;kAA

x x x x x

ts fufcsr vf[kyk dyk uks dkeuk y[kkbA

bLV vfu"V fc[kkn lq[k ctZ leku xrkbAA[1]

कवि कहता है कि भक्त को योगियों की तरह अपना अन्तःकरण साफ रखना चाहिए, तभी वह मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करता है–

HkDr lks tkxhtru ey&ghukA lkr Loekul lsok ihukAA

fuely X;kuoku tu lxkA mfnr efr lrr Hke&HkxkAA

---

1 रामखण्ड रामायण, अटवीपथ, दोहा 60–62 पृ0 31–32

lor lr&ljk:g&ikÅA efDr iklr ;g lyHk mikÅA
rkr eePN ,fg dj vkxA gkr mikf/k fcxr Hke R;kxAA
x x x x x
fcxr mikf/k vlkf/k [kV lkb ekPN HkxokuA
lrr le&njlh lfjl ty ty&yhu ijkuAA[1]

मोक्ष प्राप्ति का ज्ञान लक्ष्मण जब श्रीराम से पूछते हैं, तो राम के श्री मुख से मोक्ष प्राप्ति के जो मार्ग बताए गए हैं उनमें गहरा दर्शन है। माया एक आवरण है इसका भ्रम कैसे समाप्त हो, इसके लिए कवि रूद्र प्रताप सद्ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त करने की स्थिति का ज्ञान कराता है, वह कहता है–

}/khHkr ir dy ek;kA vkojuu fcPNi lkgk;kAA
vkojuu eMy Hko djkA ,fg idkj lnxUFkUg gjkAA
fyxkRek ijekRek rjA LFky lNe Hknkfn fcgjAA
vij X;ku Hkkfrd Hko vklkA fr"Bfr:"B r jfgr fujklkAA
lklkfjd llkjh nokA ukx u ftfe eDrk xu lokAA
ek;k vkojfur llkjkA cã u mjfcp ijr fugkjkAA
dkp Hkfe yf[k ftfe vX;kuA ty Hke Hkfer gkfg fcu tkuAA
cLr mjLFk ijfLFkr X;kukA lhfEu u ftfe fut en ifgpkukAA
x x x x x

d# fcpkj tc rkr rÙofg ikor ikfu ryA
ftfe xn fdy feVtkr iklr Hk, Hk[kt l[knAA[2]

कवि भक्ति और ज्ञान से समन्वित इस दर्शन को अपने स्तर पर अभिव्यक्त

1 रामखण्ड रामायण, अटवीपथ, दो0 85, चौ0 5–8, पृ0 42

2 रामखण्ड रामायण, अटवीपथ, सो0 41, चौ0 1–8, पृ0 38

नहीं करता बल्कि सम्पूर्ण दर्शन श्रीराम के मुख से प्रस्फुटित होता है। रामखण्ड रामायण के प्रत्येक काण्ड में कवि अपने वैष्णव धर्मी होने का साक्ष्य देता है। कवि जहाँ भी धर्म, दर्शन और ज्ञान की चर्चा करता है वहाँ उसका वैष्णव प्रेम प्रभावी हो उठा है।

वेदान्त निरूपण में इसका प्रतिबिम्ब देखा जा सकता हैं कवि का प्रयास है कि राम ही अद्वैत स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के रूप में स्थापित हों। कवि ने अद्वैतवाद को स्वीकार किया है। राम के ब्रह्म रूप की बात अनेक स्थानों पर कही गयी है। राम अद्वैत, परब्रह्म परमात्मा हैं–

jQk:<kx< vfr e<&nM&nkrkjA
}rghu v}r lk dhUgm }r fopkjAA
,l iHk j?ko'k&efu cn u ikor ikjA
rk dk tl cjuu pgk fut e?kk vulkjAA[1]

कवि ने सेवक सेव्यभाव और द्वैतवाद को भी माना हैं स भाव के आने पर मोह–माया के बंधन का विनाश हो जाता है। कवि ने अद्वैत द्वैतवादों को स्वीकार किया है। राम दोनों के हैं–

lod lC;Hkko eu tghA vorkjh vorkj lnghAA
fujey cf) }r ij tkdA ekg u ek;k ckf/kr rkdAA
ek;k Hkxfr mHk; iHk ukjhA dyg&jfgr nkm lfjl nykjhAA[2]

उपर्युक्त प्रसंग में जीव एवं ब्रह्म की एकता का अद्‌भुत् निदर्शन है। ईश्वर की कृपा के अभाव में अज्ञानान्धकार का नाश नहीं होता। अद्वैत बुद्धिवादी साधक माया से मोहित नहीं होता। माया और भक्ति प्रभु की पत्नियाँ हैं। माया में फंसकर जीव अपना विनाश करता है और भक्ति का आश्रम ग्रहण करके जीवन

1 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 16–17, पृ0 2
2 रामखण्ड रामायण, वंशपथ, दो0 111, चौ0 6–8 पृ0 40

को धन्य करता है। निर्मल–बुद्धि सम्पन्न साधक माया में लीन नहीं होता।

इस प्रकार कवि को दर्शन का व्यापक एवं गहन ज्ञान है। वह जीव– ब्रह्म, सेवक–सेव्य, अविद्या, माया, द्वैताद्वैत आदि की चर्चा यों ही नहीं करता है। रामखण्ड रामायण में कवि सर्वत्र अपने ज्ञान का उपयोग करता है, विशेषकर जहाँ वह अध्यात्म की बातें करने लगता है उसका विचार और चिन्तन, दर्शन बहुत उत्कृष्ट रूप प्राप्त कर लेता है।